महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ५९ अंक : १५

दयानन्दाब्द: १९३

विक्रम संवत्: श्रावण शुक्ल २०७४

कलि संवत्: ५११८

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११८

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु., **त्रिवार्षिक**-५८० रु.,

आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.।

एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर

द्विवार्षिक-९५ पा./१५२ डॉ.,

त्रिवार्षिक-१४० पा./२२५ डॉ.,

आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.

एक प्रति - ३ पाउण्ड

एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९/५९

परोपकारी

अगस्त प्रथम २०१७

अनुक्रम

०१. गौवध, गौरक्षक और सरकार	सम्पादकीय	०४
०२. यज्ञ ही क्यों-३	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती	सोमेश 'पाठक'	०८
०४. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु	१२
०५. प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप	पं. उदयवीर शास्त्री	१७
०६. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२१
०७. लोकोत्तर धर्मवीर-४	तपेन्द्र वेदालंकार	२२
०८. वेद गोष्ठी-२०१७ के लिए निर्धारित विषय		२६
०९. मेरे कुछ असिद्ध स्वप्न	स्वामी श्रद्धानन्द	२९
१०. गुरुकुल के सम्बन्ध में मेरा सपना	सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	३५
११. शङ्का - समाधान - ६	डॉ. वेदपाल	३९
१२. संस्था-समाचार		४१

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

- उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ -
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

गौवध, गौरक्षक और सरकार

भारत में प्राचीन काल से ही गौरक्षा (पशुरक्षा) की मान्यता रही है। जब तक विदेशी आक्रान्ताओं ने इस भारत-भूमि पर अधिकार नहीं कर लिया, तब तक पशुपालन एवं उसकी रक्षा के अनेक उदाहरण हमारे साहित्य में बहुतायत में उपलब्ध होते हैं। भारतीय संस्कृति में गौ सांस्कृतिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय अस्तित्व का प्रतीक सदा से रही है। सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में गौ के संदर्भ में इसी दृष्टिकोण को अभिहित किया गया है। भारतीय जीवन पद्धति जो मूलत: कृषिमूलक रही है उसमें गौ एक आर्थिक साधन ही नहीं अपितु उसके माध्यम से जीवन के बहुआयामी तत्वों का संरक्षण और संवर्द्धन भी होता है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए भारत में प्राचीन काल से ही गौवध को स्वीकार नहीं किया गया। यहाँ तक कि वेदों (अथर्ववेद 1/16/4, यजुर्वेद 30/18) में गाय का वध करने वाले को सीसे की गोली से मारने तक का उपदेश मिलता है।

गौरक्षा हेतु विदेशी मुस्लिम एवं अंग्रेजी शासनकाल में भी अनेक बलिदानियों ने गौरक्षा हेतु प्राण न्यौछावर किए हैं। महर्षि दयानन्द ने '**गौकृष्यादि रक्षिणी सभा**' की स्थापना करते हुए पशुओं, विशेषत: गाय की रक्षा, उसके पोषण एवं संवर्धन के लिए आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक कारणों की सम्यक् विवेचना प्रमाण एवं तर्कपूर्वक की है। वेदादि सत्य शास्त्रों में गौरक्षा के सूत्र प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। अत: गौरक्षा एवं पशुरक्षा हमारा धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक दायित्व है। यदि तर्क को परे रखकर भी हमारे तथाकथित सेक्युलरवादी (वामपंथी, कांग्रेसी इत्यादि) नागरिक विचार करें तो उनको समझ आना चाहिए कि गौरक्षा विशेषकर हिन्दुओं का धार्मिक मामला है और इसे श्रद्धा के साथ जोड़ा जाता है। **जिस प्रकार हिन्दुओं से इतर अन्य मत-मतान्तरों की विभिन्न धार्मिक पद्धतियों को श्रद्धा के कारण अतार्किक होने पर भी बहुमत हिन्दू समाज स्वीकार करता है उसी प्रकार उन्हें भी हिन्दुओं के इस श्रद्धा-पात्र का सम्मान करना चाहिए।** अनेक मुस्लिम धर्मगुरुओं ने ऐसा किया भी है। शियाओं में तो गौमांस-भक्षण के विरुद्ध फतवा तक जारी हो चुका है। परन्तु वर्तमान में हम देखते हैं कि गौरक्षा के विरुद्ध सबसे सशक्त आवाज तथाकथित मानवाधिकारवादियों एवं सेक्युलरों की है, जिनमें अधिकांशत: वामपंथी हैं। इन्हीं वामपंथियों ने प्राचीन भारत में गौमांस भक्षण की वैधता का शगूफ़ा भी छोड़ा हुआ है। इसके समर्थन में इनके वक्तव्यों के साथ-साथ पुस्तकें भी प्रकाश में आईं, यद्यपि वे अत्यन्त लचर तर्कों एवं प्रमाणों पर आधारित हैं, उन्हें समुचित उत्तर भी वैदिक विद्वानों द्वारा पूर्व में दिए जा चुके हैं। परन्तु इनके प्रयासों को उसी प्रकार देखा जाना चाहिए, जिस प्रकार अंग्रेजों के प्रयास थे कि सत्ता के लिए हिन्दुओं को अन्य मतावलम्बियों से निरन्तर संघर्षरत रखा जाए।

वर्तमान में कुछ अप्रिय घटनाओं के कारण गौवध का मुद्दा चर्चा के केन्द्र में पुन: आया कि जब कुछ तथाकथित गौभक्तों द्वारा तथाकथित या वास्तविक गौभक्षकों या गौतस्करों को पकड़कर पीटा गया या उनकी हत्या भीड़ द्वारा की गई। साथ ही भारत की केन्द्रीय सरकार द्वारा '**पशु क्रूरता निरोधक**', '**पशुधन बाजार नियम 2017**' को जारी किया गया। इसका तात्पर्य यह है कि देश के नागरिक गौ इत्यादि पशुओं से प्राप्त उत्पादों से अपना जीवन ही समृद्ध न करें, प्रत्युत किसानों की आर्थिक उन्नति, जैविक खाद, बाल-पोषण इत्यादि के लिए उन्हें स्वीकार करें एवं इसके लिए आर्थिक नियोजन का मूलभूत ढाँचा भी विकसित करें। परन्तु इस नियम का विरोध धार्मिकों से अधिक वामपंथी विचारधारा तथा कुछ राजनीतिक दलों द्वारा यथाशक्ति किया गया एवं किया जा रहा है। वे इसे राजनीतिक मुद्दा बनाकर, लोगों की भावनाओं को भड़काकर केन्द्र सरकार के विरुद्ध अपने राजनीतिक लाभ के लिए प्रयुक्त कर रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि तथाकथित सेक्युलरवादियों ने केरल के कन्नूर में कांग्रेस के कार्यकर्ताओं द्वारा जिस निर्ममता और क्रूरता के साथ एक बछड़े को काटा और उसका मांस परोसा गया, जिसकी वीडियोग्राफी बनाकर सोशल साइट्स पर डाल दी गई, यह उचित कृत्य नहीं कहा जा सकता। तथाकथित बुद्धिजीवियों, एतद्विषयक राजनीतिक दलों और सेक्युलरवादियों ने इसका विरोध न तो मोमबत्ती जलाकर किया और न ही अपने पुरस्कारों और तंमगों को लौटाकर ही किया। इसी से ज्ञात होता है कि तुष्टिकरण की नीति ने भारतीय संस्कृति की सनातन परम्परा में गौवंश पर प्रतिक्रियावादी स्वरूप को उभारने में मदद की है।

ध्यातव्य है कि लोकतन्त्र बहुमत के आधार पर होता है, हालाँकि इसका यह अभिप्राय नहीं है कि जिस सम्प्रदाय, पंथ की संख्या कम है उनके मौलिक अधिकारों का हनन किया जाए, परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि इस शर्त के आधार पर बहुसंख्यकों की धार्मिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, सनातन विरासत

की अवहेलना और उसको खण्डित करने का जोर-शोर से प्रयास न किया जाए। इसे अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता कदापि नहीं कहा जा सकता और न ही इसे बहुसंख्यकों द्वारा अल्पसंख्यकों पर आक्रमण की ही संज्ञा दी जा सकती है। श्रीनगर में पुलिस अधिकारी अयूब पण्डित को जिस भीड़ ने नग्न करके क्रूरता के साथ उसकी पिटाई की और तब तक कि जब तक उसकी मृत्यु नहीं हो गई। क्या इसे न्याय की सीमा को लांघती हुई क्रूरता की संज्ञा नहीं दी जायेगी? और यह तब हुआ जब शब-ए-कर्त (पवित्र रात) को नोहट्टा की जामिया मस्जिद में नमाजियों की सुरक्षा में उन्हें लगाया गया था। तब इस क्रूर घटना पर राजनीतिक दलों द्वारा और तथाकथित सेक्युलरवादी मीडिया ने कहीं भी जन्तर-मन्तर या नुक्कड़ नाटक या कोई पुरस्कार की वापसी का कोई भी आन्दोलन खड़ा नहीं किया। इनके द्वारा पोषित स्वयंसेवी संघटनों (एनजीओ), जो गौ सेवकों के विरुद्ध तत्काल दड़बों से बाहर आ जाते हैं और मानवाधिकार हनन की दुहाई देकर छाती पीटते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, ने भी कुछ नहीं किया। उनका यह दोहरा चरित्र ही सम्प्रदायवाद और प्रतिक्रियावाद को उभारने का तात्कालिक और ज्वलन्त उदाहरण है।

भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता और अहिंसा की सुदीर्घ परम्परा रही है। गौवध आम हिन्दू भारतीय के लिए अन्दर तक कचोटने वाला विषय है जो उसकी आस्था पर तीव्र आक्रमण करता है। केवल वोट बैंक की चिन्ता के कारण स्वतन्त्रता के बाद यह अपेक्षा की जा रही थी कि अब भारतीय संविधान द्वारा मानवीय मूल्यों का संरक्षण किया जायेगा, लेकिन राजनीतिक दुराग्रहों, पाखण्डों, पूर्वाग्रहों और साम्प्रदायिकता की आड़ में बहुसंख्यक हिन्दू समाज को दबाने और उसके प्रतीकों, मान्यताओं और परम्पराओं को खण्डित करने की सुनियोजित योजनाओं को तथाकथित राजनैतिक दलों, बुद्धिजीवियों द्वारा विभिन्न रूपों में क्रियान्वित किया जाता रहा।

यह विषय इसलिए भी प्रासंगिक और विवादित हो गया कि भारत के प्रधानमन्त्री श्रीमान् नरेन्द्र मोदी बार-बार सार्वजनिक मंचों से तथाकथित गौरक्षकों की भीड़ द्वारा गौभक्षकों या गौतस्करों की पिटाई या हत्या की निन्दा कर चुके हैं। यद्यपि तथाकथित सेक्युलर तत्त्व प्रधानमन्त्री के इस वक्तव्य को नाकाफी मानते हुए उनकी तीव्र आलोचना कर रहे हैं और परोक्ष रूप से उन्हें गौरक्षकों का समर्थक सिद्ध कर रहे हैं। दूसरी ओर वास्तविक गौरक्षक प्रधानमन्त्री के उक्त वक्तव्य को गौरक्षा-विरोधी मानते हुए उनकी निन्दा कर रहे हैं कि इससे गौरक्षकों का मनोबल गिरेगा और गौरक्षा का मिशन शिथिल पड़ेगा।

आर्य समाज का इस विषय में स्पष्ट मानना है कि यद्यपि गौरक्षा हमारा धर्म है और हम चाहते हैं कि गौरक्षा-संबन्धी कानून बनना चाहिए, जिसके लिए समस्त हिन्दू समाज ने मिलकर आन्दोलन भी किए, परन्तु सरकार की अपनी सीमाएँ हैं और देश की जनता की बहुलवादी परम्पराओं को दृष्टिगत रखकर ही उसे नीतिगत निर्णय लेना होता है ताकि विरोधी दल उसके किसी निर्णय को समाज विरोधी सिद्ध कर जनता को भड़का न सकें और राजनीतिक लाभ न ले सकें। सत्तारूढ़ दल गौमांस-भक्षी क्षेत्रों, विशेषत: केरल, तमिलनाडु, तेलंगाना एवं उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में भी अपना प्रसार करना चाहता है। अत: वह सतर्कतापूर्वक इस दिशा में अपने कदम रखेगा; यह निश्चित है। गौरक्षकों द्वारा कानून अपने हाथ में लेकर किसी को मार देने की घटनाओं से सरकार की स्थिति असहज हो जाती है, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से संविधान का उल्लंघन है। ऐसे में इस संभावना को भी नकारा नहीं जा सकता कि अनेक फर्जी गौरक्षक दल भी हैं, जो विरोधी दलों के संकेत पर ऐसी घटनाओं को अंजाम देते हों।

ऐसी घटनाओं और प्रधानमन्त्री के वक्तव्य से सच्चे गौरक्षकों एवं गौभक्तों को निराश और हतोत्साहित होने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि हम जानते हैं कि गौरक्षक बहुधा अपने सीमित संसाधनों के बल पर कई बार अपने प्राण हथेली पर रखकर संविधान की सीमाओं में रहकर गौतस्करों से मुकाबला करते हैं, घायल होते हैं और कई बार अपने प्राण न्यौछावर करते हैं।

सरकार को उन प्रदेशों में अपने राज्यतन्त्र को अधिक सक्रिय करने की आवश्यकता है जहाँ गौवध-निषेध का कानून बना हुआ है। अन्यथा इस प्रकार की घटनाओं को कैसे रोका जा सकेगा, जबकि हमारा धर्म गौरक्षा के लिए संप्रेरित करता है? हाँ, संविधान के अनुपालन, गौरक्षकों तथा अराजकता फैलाने वालों के बीच के भेद को जानना-समझना भी आवश्यक है, जो राज्य का कर्त्तव्य है। ज्ञात हुआ है कि हरियाणा सरकार गौरक्षकों को पहचान पत्र जारी करेगी ताकि उनको अधिकार देने के साथ-साथ उन्हें उत्तरदायी भी बनाया जा सके। आशा है, अन्य सरकारें भी ऐसा कर गौरक्षकों का उत्साहवर्धन करेंगी, जिससे अप्रिय और संविधान विरोधी घटनाओं की आवृत्ति न हो।

अध्यना यजमानस्य पशून् पाहि।। (यजुर्वेद)

(हे पुरुष! तू इन पशुओं को कभी मत मार और यजमान् अर्थात् सब के सुख देने वाले जनों के संबन्धी पशुओं की रक्षा कर जिनसे तेरी भी पूरी रक्षा होवे।)

- दिनेश

यज्ञ ही क्यों - ३

प्रवचनकर्त्ता - डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

मनुष्येतर अन्य जीव यज्ञ नहीं कर सकते इसीलिए उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं बनती, प्रकृति उसका निराकरण करती है, लेकिन बिगाड़ हमने किया हुआ है, इसलिए हम निराकरण का प्रयास करें। हमारे ऋषियों ने यज्ञ को हमारे जीवन में एक विशेष स्थान दिया है। आजकल के हमारे विज्ञान पढ़ने वाले लोग कह सकते हैं कि और उपाय भी तो काम में लिए जा सकते हैं। पर्यावरण शुद्धि के लिए पेड़ लगा देंगे। पर्यावरण शुद्धि के लिए फूल लगा देंगे। पर्यावरण शुद्धि के लिए अगरबत्ती जला देंगे। पर्यावरण शुद्धि के लिए पानी में गोलियाँ-वोलियाँ डाल देंगे तो पर्यावरण शुद्ध हो जाएगा। क्या जरूरत है हवन करने की? बात तो ठीक लगती है। सवाल यह है कि ये चीजें कितनी कारगर हैं। इनकी क्षमता कितनी है और इनका मूल उपादान क्या है? आजकल जो रासायनिक द्रव्य हैं पर्यावरण शुद्ध करने के, वो मूलत: पर्यावरण का शोधन नहीं करते। आप नहाए नहीं है, तो इत्र लगाकर आ सकते हैं, कचरे के ढेर पर इत्र डालने से दुर्गन्ध दब जाएगी, दूर नहीं होगी। हम सुगन्ध को मिला करके दुर्गन्ध को सुगन्धित कर लेते हैं, कुछ हल्का कर लेते हैं, लेकिन उसे दूर नहीं कर सकते, उसे हटा नहीं सकते। फूलों की सुगन्ध इस वातावरण में मिलकर दुर्गन्ध के साथ समरस हो जाएगी पर दुर्गन्ध को हटा नहीं सकती। पर्यावरण बाहर जंगलों में अच्छा होगा, घर में क्या करोगे? यहाँ पेड़ तो लगने से रहे। बन्द घर में ऐसी गलियाँ होती है जहाँ सूरज नहीं दीखता। अजमेर में तो हैं, यहाँ पता नहीं हैं या नहीं हैं। तीन या चार मंजिल का मकान है तो नीचे की मंजिल का क्या होगा? उसमें शुद्धि कैसे होगी? उसका एक ही तरीका है कि यदि आप यज्ञ करते हैं, तो पूरे पर्यावरण का वायु का चक्र बदल जाता है।

एक सामान्य नियम है। हमारा बच्चा जो साईंस पढ़ता है, वो जानता है कि अग्नि के जलने से, जब जलीय अंशों का शोषण होता है, तो हवा हल्की होती है और जो चीज हल्की होती है, वो वातावरण में ऊपर उठ जाती है और चक्र नए सिरे से शुरू होता रहता है। यज्ञ करने से ये चक्र हम जारी कर सकते हैं और हमारी जो स्थिर हवा है, उसको बदल सकते हैं, इस चक्र को हम और किसी तरीके से नहीं बदल सकते। इसीलिए ये जितने बाकी सब उपाय हैं, ये उपाय होने पर भी न तो समग्र हैं, न सबल हैं। यदि कोई उपाय है तो वो केवल यज्ञ का उपाय है। इसीलिए प्रतिदिन सबको यज्ञ अवश्य करना चाहिए, क्योंकि यज्ञ एक ऐसी अद्भुत प्रक्रिया है, जिससे जड़ और चेतन दोनों को लाभ होता है। हमारे एक मित्र कहते हैं- हम तो ऐसे भोजन में भरोसा करते हैं जिनसे दोनों का काम चलता है। यज्ञ करते हैं तो जड़-चेतन दोनों को भोजन मिलता है। पर्यावरण तो शुद्ध हुआ ही, लेकिन उसके साथ-साथ जो चेतन व्यक्ति श्वास-प्रश्वास ले रहा है, वो भी तृप्त हो रहा है। गीता में एक बड़ी सुन्दर पंक्ति कही है- गृहस्थ के लिए दो बातें अनिवार्य हैं। दो में से एक तो उसको जरूर करनी चाहिए। वो भोजन करने का हकदार तभी है जब या तो हुत शेष खाए, या भुक्त शेष खाए। भुक्त शेष का मतलब होता है- अतिथि को खिलाने के बाद खाना चाहिए और हुत शेष है अग्नि में आहुति देने के बाद खाना चाहिए। हम खाने के अधिकारी बनते ही तब हैं जब हम यज्ञ में आहुति दे लेते हैं। गीता की पंक्ति याद कीजिए। **यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः भुञ्जन्ति ते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्मकारणात्।** कितनी कमाल की बात है, आप अपनी कमाई से, अपने घर में पका रहे हैं, अपने लिए पका रहे हैं, तो शास्त्र कहता है कि आप पाप ही पका रहे हैं और पाप ही खा रहे हैं। यह चिन्तन विदेश में आ सकता है क्या? तो फिर क्या करें? **यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः**- वे लोग निष्पाप होते हैं जो यज्ञ में आहुति देकर भोजन करते हैं। उसका नाम क्या होता है- यज्ञशेष, यज्ञ का भाग उसमें चला गया है। हमारे ऋषि बहुत समझदार थे, बहुत ही भला चाहने वाले थे, क्योंकि घर में यज्ञ के लिए अच्छी चीजें रखोगे तो खाने में भी काम आ जाएगी और यदि यज्ञ नहीं करोगे, तो घटिया ही चीजें खाओगे।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः। किल्विष कहते हैं पाप को अर्थात् समस्त पापों से बचता है। इसे यज्ञशेष कहते हैं, पर आप इसे बाँटते हैं, तब इसे प्रसाद कहते हैं। प्रसाद का अर्थ क्या होता है- प्रसन्नता। **प्रसादे सर्वदुःखानाम् हानिरस्योपजायते, प्रसन्नचेतसो ह्याशुः बुद्धिः पर्यवतिष्ठते। नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना। न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।** अर्थात् यज्ञ करने वाला व्यक्ति दु:खी नहीं रह सकता। दु:ख तो अभाव का नाम है और यज्ञ

करने वाला तो दाता है, देने वाला है। जो दे रहा है, उसके दु:ख का कोई कारण नहीं है। वो तो बाँट रहा है। जिस चीज को वह बाँट रहा है, उसका नाम उसने रखा है- प्रसाद। प्रसाद का शाब्दिक अर्थ है- प्रसन्नता। वो प्रसन्नता बाँट रहा है। हम अपनी भावनाओं को मूल वस्तुओं से जोड़ते हैं तो वे हमारे भावों को अभिव्यक्त करने के कारण बनती हैं। इसलिए जब वह प्रसाद बाँटता है तो वस्तु नहीं बाँट रहा है, अपनी प्रसन्नता बाँट रहा है, क्योंकि बिना प्रसन्नता के इस दुनिया में सुख नहीं है। यदि आप सुखी होना चाहते हैं तो आपको प्रसन्न होना पड़ेगा। आपकी प्रसन्नता का जो प्रतीक है, आपकी प्रसन्नता की जो पहचान है, आपकी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति है कि आप सिकुड़ते नहीं हैं, आप फैलते हैं, आपका हृदय विकसित होता है। हमारा मन प्रफुल्लित होता है, हम मन को कहते हैं कि ये खिलता है। ये खिलना ही तो विस्तार है। ऐसा व्यक्ति ही प्रसन्न हो सकता है, जिसका मन खिला हुआ है, जिसका हृदय खिला हुआ है और जिसका हाथ खुला हुआ है। इसलिए हम प्रसाद को वितरित करते हैं, बाँटते हैं। हम इसीलिए उसे यज्ञशेष कहते हैं कि हमने उसे यज्ञ के निमित्त बनाया है। जब अतिथि के निमित्त आप बनायेंगे तो घटिया चीज नहीं बनायेंगे और घटिया चीज घर में बनेगी नहीं तो कोई खाएगा क्यों? आप यज्ञ के लिए बनायेंगे तो बढ़िया बनायेंगे और बढ़िया बनेगा तो फिर अच्छा ही खाया जाएगा। गलत तो नहीं खाया जाएगा। ऋषियों का चिन्तन दिव्य है, व्यापक है।

इसके साथ एक सवाल और उठाया है। ठीक है, आप यही तो चाहते हो ना कि लकड़ी में कुछ आग जलाकर, कुछ घी, सामग्री डाल दें और वातारण शुद्ध हो जाए। हम यह करने को तैयार हैं, लेकिन बाकी बातें क्यों थोपते हो हमारे ऊपर? आप नित्यकर्म करके, स्नान करके, संध्या करके यज्ञ पर बैठो, भला इतना लम्बा-चौड़ा व्यापार करने की क्या जरूरत है। लकड़ी में आग लगाई, सामग्री डाली, आपका उद्देश्य पूरा हो गया। कहते हैं कि इसमें वेद मन्त्र भी पढ़ो। अब यज्ञ करने वाले तो हनुमान चालीसा से भी हवन करते हैं, सुन्दर काण्ड से भी हवन करते हैं, दुर्गासप्तशती से भी हवन करते हैं। आपकी मर्जी है किसी से भी कर सकते हो। ये पुरोहित की मर्जी है कि वो किसी से भी करा दे। यजमान पढ़ा-लिखा है तो उसको पकड़ में आता है या पसन्द-नापसन्द होता है, नहीं तो पुरोहित जैसा चाहता है, वैसा कर लेता है। एक बार हिन्दुस्तान टाइम्स अखबार में एक बड़ी सुन्दर चर्चा छपी थी। चर्चा तो क्या एक लेख छपा था और लेख लिखने वाले ने लिखा था कि अज्ञानता में कितना सुख होता है। बोले ऐसा हुआ कि मेरे बच्चे की शादी के लिए मैंने किसी पण्डित को बुलाया। पण्डित संयोग से नहीं आ सका तो उसने अपने बच्चे को भेज दिया। बच्चे को कुछ आता-जाता नहीं था, वो किताब गलत उठा लाया और उसने अन्त्येष्टि के मन्त्र पढ़ कर विवाह करा दिया। मैंने उससे पूछा, बेटा ये तू क्या पढ़ रहा है, इस किताब पर क्या लिखा है। जब उसने देखा तो उसको बड़ी शर्म आई, कहने लगा- गलती हो गई।

जब तक हम नहीं जानते कि पण्डित जी क्या पढ़ते हैं, तब तक तो हमको कोई परवाह नहीं है, लेकिन यदि आप जानते और समझदार हैं तो फिर आपको अच्छा ही करना पड़ेगा। गलत होता तब है, जब आप सही जानते हैं। नहीं तो, गलत होता कहाँ है? हम जो कुछ करते हैं उसे गलत नहीं समझते, क्योंकि सही का पता नहीं है, अज्ञानता है। अज्ञानता के परिणामस्वरूप जो करते हैं, वो सब अच्छा है। जब अज्ञानता की तुलना ज्ञान से करते हैं, तो मुझे बड़ा अटपटा लगता है। बड़ी विचित्रता अनुभव होती है, बड़ा खेद होता है। एक बार किसी व्यक्ति की अन्त्येष्टि में मैं गया, वो आर्यसमाजी थे, उनके परिवार ने मुझे बुलाया कि अन्त्येष्टि है, आप आना। जब हम शव को ले जाते हैं, तो मन्त्रों का पाठ करते हैं। गायत्री मन्त्र है, ईश्वर स्तुति-प्रार्थनापासना के मन्त्र हैं, उनको पढ़ते हैं। ये राम नाम सत् पढ़ते हैं, मैं वहाँ 'विश्वानि देव' आदि मन्त्र पढ़ रहा था, और वो भले आदमी 'राम नाम सत् है' बोल रहे थे। मैंने कहा- देखो, राम नाम सत् कहना बुरा नहीं है। राम का नाम लेने से मेरी कोई दुश्मनी भी नहीं है। राम का नाम तब लेना है जब बढ़िया चीज अपने को मालूम नहीं है, तो जो मालूम है, उससे काम चलायेंगे। हमको पता ही नहीं है कि क्या बोलना है तो राम नाम बोल लो, लेकिन यदि वेद मन्त्र है हमारे पास और हम जानते भी हैं तो फिर 'राम नाम सत्' का आग्रह क्यों? हम जो न्यूनतम कार्यक्रम करते हैं वो हमारी अज्ञानता के परिणामस्वरूप जो सम्भव है, वो करते हैं। इसलिए उससे कोई द्वेष नहीं, उससे कोई घृणा नहीं, उसके प्रति कोई आक्रोश नहीं, वो जो कर रहा है ठीक कर रहा है, उसके हिन्दू होने का इतना ही लक्षण है, इतनी ही पहचान है कि वो राम नाम ले रहा है, इसलिए जो कर रहा है ठीक कर रहा है। लेकिन वो यह कहे कि नहीं, इससे ऊँचा कुछ नहीं, इससे आगे कुछ नहीं, वो गलत है। इसलिए मैंने कहा कि हम किसी भी चीज से आहुति दे सकते हैं, देते हैं। लेकिन यदि चुनाव करना हो तो सर्वोत्कृष्ट का किया जाता है। बेहतर का चुनाव किया जाता है, घटिया चीज का चुनाव नहीं किया जाता।

शेष भाग अगले अंक में....

अपने दीं पर फ़िदा
(स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती)

सोमेश 'पाठक'

गंगा की तीव्र धारा और पर्वतों की तलहटी, वेद-मन्त्रों का गुञ्जन और सुरम्य वातावरण। कहते हैं कि कोई मतवाला यहाँ ऋषि दयानन्द के स्वप्नों को मूर्तरूप दे रहा था। उसने ठान लिया था कि ऋषियों की विलुप्त शिक्षण-पद्धति को पुनर्जीवित कर देना है। शायद आप समझ गये होंगे कि मैं गुरुकुल कांगड़ी की बात कर रहा हूं और उस मतवाले की भी जिसे दुनिया आज स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से जानती है। इसी गुरुकुल में एक रोज बालक नवीनचन्द्र ने प्रवेश लिया था, जिसका नाम महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने बदल दिया था। बस यहीं से बुद्धदेव 'विद्यालंकार' की कहानी शुरु होती है। वह नाम, जिसने भगवद्गीता को वैदिक बना डाला। वह नाम, जिसने कायाकल्प जैसे ग्रन्थों को रच डाला। वह नाम, जिसे आर्यजगत् 'शतपथ के पथिक' के रूप में जानता है।

पण्डित जी का जन्म १ अगस्त १८९५ ई. को श्री रामचन्द्र (पूर्व नाम-पं. कृपाराम)व श्रीमती रामवती के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में हुआ। श्री रामचन्द्र जी सहारनपुर जिले के पटेहड़ कस्बे के मूल निवासी थे तथा मुद्गल गोत्रीय ब्राह्मण थे। आपको वाल्मीकि रामायण तथा रामचरितमानस दोनों कण्ठस्थ थीं। अपने पुत्र में महापुरुषों के प्रति अगाध श्रद्धा व निष्ठा का बीज आपने ही बोया था। बचपन में आप उसे अपने पेट पर बिठाकर महापुरुषों के जीवन चरित्र सुनाते थे। श्री केशवराम जी तथा लाला खुशीराम जी की प्रेरणा पाकर आपने अपने पुत्र को गुरुकुल में प्रविष्ट कराया था। गुरुकुल में रहते हुये पं. बुद्धदेव जी ने अनेक विषयों का गूढ़ अध्ययन किया। बुद्धि व स्मृति अच्छी थी, इसलिये विषय को एक बार में ही चिरकाल के लिये आत्मसात कर लिया करते थे। जैसे-जैसे आप आगे बढ़ते गये, आपकी बुद्धि और प्रखर होती गयी। अन्ततोगत्वा १९१६ ई. में गुरुकुल से विद्यालंकार की उपाधि प्राप्त की। तदोपरान्त आर्यसमाज रूपी यज्ञ में अपने जीवन की हवि समर्पित करने का व्रत लिया और इतिहास जानता है कि सम्पूर्ण जीवन इस व्रत पर खरे उतरे। ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज को जन-जन तक पहुँचा देना, बस यही आपके जीवन का लक्ष्य था। वक्तृता में आपका कोई सानी नहीं था। आपकी अभिव्यक्ति अत्यन्त तर्क सम्मत और ओजपूर्ण ढंग से हुआ करती। जिस समय आप बोलते थे तब तो जनता में सन्नाटा छा जाता था या फिर वाह-वाह की गूँजें उठती थीं। लेखनी तो अक्षम है उनकी वक्तृता का वर्णन करने में, हाँ! जिन लोगों ने उन्हें साक्षात् सुना है वे ही बता सकते हैं कि कैसे वक्ता थे वे? पं. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने अपने एक लेख में लिखा था कि पं. बुद्धदेव विद्यालंकार जैसा वक्ता आर्य समाज के क्षेत्र में कभी नहीं हुआ। जिस समय बोलते-बोलते वे जोश में आ जाते थे तो मञ्च थरथराने लगता था, जनता फड़कने लगती थी और निपुणता इतनी थी कि जिस रस में चाहें जनता को बहा ले जायें। हंसाने पर आ जायें तो हँसी की लहर दौड़ जाये। करुणा में बोलने लगें तो जनता आठ-आठ आंसू रोने लगे। आपके कुछ वक्तव्य तो इतिहास की सुन्दर धरोहर बन चुके हैं, जो कि चिरस्मरणीय हैं। आपके व्याख्यान के मुख्य विषय 'ऋग्वेद का नदी सूक्त', 'वर्णाश्रम व्यवस्था' तथा 'सप्तसिन्धु सूक्त' आदि थे। अधिकतर आप इन्हीं विषयों पर बोलते थे और घण्टों बोलते रहते थे। घण्टों बोलना तो आपका स्वभाव था पर कमाल की बात तो यह थी कि श्रोता बिना हिले-डुले मन्त्रमुग्ध हो सुनते रहते थे। प्राय: आपके व्याख्यान अन्त में हुआ करते थे। उसके दो कारण थे। एक तो आपके बाद किसी और की धाक् जमना मुश्किल थी, दूसरा समय की सीमा में बोलना आपका स्वभाव न था। हाय! अब धरा पर ऐसा वक्ता कहाँ?

वक्तृत्व के साथ-साथ आपमें लेखन तथा कवित्व की भी अद्भुत योग्यता थी। आपकी लेखनी से अनेक उच्च कोटि के ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। यथा-कायाकल्प, पञ्चयज्ञ प्रकाश, गीता भाष्य, ऋग्वेद मण्डल मणिसूक्त, शतपथ ब्राह्मण भाष्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद का आंशिक भाष्य, किसकी सेना में भर्ती होंगे- कृष्ण की या कंस की?, सप्त सिन्धु सूक्त, वेदों के सम्बन्ध में क्या जानो क्या भूलो? आदि। ये समस्त ग्रन्थ व लेख अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण ढंग से लिखे गये हैं। जिनमें ऋग्वेद मण्डल मणिसूक्त में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि ऋग्वेद के प्रथम से दशम मण्डल पर्यन्त जो विषय प्रतिपादित किये गये हैं वे सभी क्रमबद्ध हैं तथा उनमें पूर्वापर सम्बन्ध भी है। यह ग्रन्थ लेखक की ऊहा को प्रदर्शित करता है। पं. सत्यानन्द वेदवागीश ने इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है। पर खेद है कि ऐसा अद्भुत ग्रन्थ अब सिर्फ पुस्तकालयों में ही देखने को मिलता है। आपका लिखा 'पञ्च

यज्ञ प्रकाश' महर्षि दयानन्द की पञ्च महायज्ञविधि की व्याख्या है। यह ग्रन्थ तीन भागों में लिखा गया था। यह भी प्रौढ ग्रन्थ है। इसे वर्णाश्रम संघ प्रभात आश्रम, मेरठ ने १९६३ में छापा था। 'कायाकल्प' भी पण्डित जी की उच्चतम रचनाओं में से एक है। यह ग्रन्थ वर्णाश्रम व्यवस्था पर लिखा गया है। वर्णाश्रम व्यवस्था की व्याख्या पण्डित जी जैसी कोई न कर सका। इतनी रचनात्मक, इतनी बुद्धिग्राह्य कि बस पूछो मत और शतपथ ब्राह्मण का भाष्य तो उपकार है आर्य जाति पर। ब्राह्मण ग्रन्थों का पठन-पाठन तो छूटा हुआ सा ही था। जटिलता देखकर लोग पढ़ने से कतराते थे। पर शतपथ की इस व्याख्या ने इस समस्या का भी समाधान कर दिया। गीता भाष्य इनका सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। गीता को तो आर्यसमाजियों ने उपेक्षित कर रखा था। पर धन्य है पण्डित जी का पाण्डित्य, जो गीता को भी आर्यसमाजी बना दिया। आज भी गीता के किसी सिद्धान्त पर कोई अटकता है तो पण्डित जी के ही भाष्य को प्रामाणिक मानता है। कवि के रूप में भी आपने खूब ख्याति प्राप्त की थी। आपकी कवितायें व भजन तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते थे। आपकी पद्य शैली मुख्य रूप से मध्यकालीन कवियों जैसी थी। आज भी कोई पढ़े तो झूम उठे। आपके भजनों का संग्रह 'उसकी राह पर' नामक शीर्षक से गुरुदत्त भवन लाहौर से प्रकाशित हुआ था। इसमें लगभग ३० भजन भावार्थ सहित दिये गये हैं। 'बिखरे हुये फूल' आपकी एक अन्य रचना है। भक्ति लहरी तथा आनन्द षट्पदी जैसे संस्कृत काव्यों की भी आपने रचना की। हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं में आपकी सिद्धहस्त लेखिनी चलती थी। आर्य जगत् ऐसे लेखक को प्राप्त करके धन्य हुआ है। आपने सुप्रभात और वैश्वानर जैसी पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया है। अत: आप उच्च कोटि के पत्रकार भी थे।

शास्त्रार्थ महारथी के रूप में भला आपको कौन भुला सकता है। आपकी ओजस्वी वक्तृता और तर्क के सामने कभी कोई टिक न सका। आपके अनेकों शास्त्रार्थ पुस्तक रूप में छप चुके हैं। कुछ शास्त्रार्थ 'निर्णय के तट पर' ग्रन्थ में भी संगृहीत हैं। सन् १९२९ ई. में आपका एक शास्त्रार्थ पौराणिक विद्वान् कालूराम जी के साथ हुआ था। इस शास्त्रार्थ में कालूराम जी को नाकों चने चबा दिये थे। अन्त में बेचारे झुंझला कर कहने लगे थे कि मैं कल से शास्त्रार्थ नहीं करूँगा। शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में एक घटना और उल्लेखनीय प्रतीत हो रही है। हैदराबाद में सन् १९३५ ई. में पं. बुद्धदेव जी का सनातनी विद्वान् श्री माधवाचार्य से शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा के विषय में था। तीन शास्त्रार्थों में तो माधवाचार्य जी पराजित हुये। चौथे में जब उनसे कुछ न बन पड़ा तो एक अजीब सा खेल खेल दिया। माधवाचार्य जी बोले कि 'यदि आप मूर्तिपूजा नहीं मानते हैं तो स्वामी दयानन्द के चित्र पर जूता मारकर दिखाइये तो हम जानें कि जड़ोपासना नहीं मानते।' इस पर पं. बुद्धदेव जी ने उसे एक कागज का टुकड़ा बताकर उस पर जूता मार दिया। बस फिर क्या था पौराणिकों को अवसर मिल गया और एक पुस्तक छाप दी, जिसका नाम था 'स्वामी दयानन्द के सिर पर बुद्धदेव का जूता।' इतना ही नहीं आर्यसमाज में भी इसके प्रति भयंकर प्रतिक्रिया हुयी। महाशय कृष्ण जी ने 'प्रकाश' में पं. बुद्धदेव जी के विरुद्ध अनेक लेख लिख डाले। महात्मा हंसराज जी ने भी क्रोध में भला बुरा कह डाला। और यहाँ तक कि उन्हें आर्य समाज से निष्कासित कर दिया गया। पर जल्दी ही आर्यसमाजियों को अपनी भूल समझ आ गयी तथा सुधार भी कर लिया था। इस घटना में कितनी सत्यता है यह सिरदर्दी तो इतिहासज्ञों के लिये छोड़ देते हैं। हमारे लिये तो ये प्रेरणा है कि सिद्धान्त की रक्षा तो सर्वस्व लुटाकर की जाती है और पं. बुद्धदेव जी ने ये किया। अगर वो ऐसा न करते तो शायद वे आज पं. बुद्धदेव कहलाने के अधिकारी भी न होते। ऋषि दयानन्द का सच्चा अनुयायी होने का जो मानदण्ड उन्होंने प्रस्तुत किया वो कोई और न कर सका और शायद कर भी न सके।

१ अगस्त १९४५ ई. को लाहौर में स्वामी आत्मानन्द जी से वानप्रस्थ की दीक्षा ग्रहण की। उस समय उनकी अवस्था ५१ वर्ष की थी। इसके बाद सन् १९६२ ई. में दिवाली के दिन अजमेर में स्वामी व्रतानन्द जी से संन्यास की दीक्षा ग्रहण की और स्वामी समर्पणानन्द जी के नाम से जाने गये। सच कहें तो यह नाम भी स्वयं को धन्य अनुभव करता होगा जो आप जैसी हस्ती के साथ जुड़ सका। कौन है जो नहीं जानता इस नाम को।

आपने आर्यजगत् के लिये अनेक बड़े कार्य किये। वर्णाश्रम संघ की स्थापना की। प्रभात आश्रम की स्थापना की। जहाँ आज भी गुरुकुल चल रहा है। आपके ही शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी सर्वात्मना समर्पित होकर जिसका संचालन कर रहे हैं। जहाँ उच्च कोटि के वैय्याकरण तथा विद्वान् तैयार किये जा रहे हैं। आपने भारतीय लोक संघ की भी स्थापना की। अनेक सत्याग्रहों में आपने भाग लिया। हिन्दी सत्याग्रह

शेष भाग पृष्ठ संख्या ४२ पर..........

(परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित)

योग–साधना शिविर

दिनांक : ८ से १५ अक्टूबर २०१७

आज समाज के अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार से लोग साधना के लिए प्रयासरत हो रहे हैं। अनेक प्रशिक्षकों द्वारा इस विषयक ज्ञान–विज्ञान भी प्रदान किया जा रहा है। फिर भी साधकों को साधना की सन्तुष्टिदायक स्थिति प्राप्त नहीं हो पा रही है। इसका कारण है कि साधना के विषय **साध्य, साधन, साधक व अन्य साधकों-बाधकों** के ज्ञान का वैदिक परम्परा से दूर होना। इस योग–साधना शिविर में इन्हीं विषयों का वैदिक–दर्शनों के द्वारा ज्ञान करवाया जायेगा, उससे सम्बन्धित जिज्ञासाओं का समाधान व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी उन्नति का मापदण्ड बताया जायेगा। यह शिविर अवश्य ही आपकी साधना की उन्नति में विशेष साधन बनेगा, जिससे कि मानव जीवन के मुख्य व चरम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तरोत्तर काल में आप अपने निकट अनुभव करने लगेंगे।

प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक प्रार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।

२. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

३. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य–सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।

४. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।

५. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि–उद्यान परिसर में ही की जायेगी।

६. बाह्य–वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे– समाचार–पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखने आदि पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।

७. किसी प्रकार का शारीरिक रोग यथा– खाँसी, जुकाम अथवा अन्य कोई ध्वनि उत्पादक रोग वाले को प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

८. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।

९. किसी भी मादक द्रव्य, चाय–कॉफी आदि का सेवन निषिद्ध होगा।

१०. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन–सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।

११. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ–मन्त्री परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) से संपर्क कर शिविर से पूर्व शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता–बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्–पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष चाहने वालों को अतिरिक्त शुल्क १००० से २००० रु. देय होता है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार की जाती है।

ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं, शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने-ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक), लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गंभीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। यदि अपने कार्य स्वयं न कर सकते हों तो सहायक साथ में लायें। अजमेर या निकटवर्ती स्थल (पुष्कर) देखना चाहें, तो शिविर से पूर्व या पश्चात् अतिरिक्त समय निकाल कर आयें। लौटने का रेल-आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने पीने की वस्तुएँ साथ न लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क १००० रु. मात्र जमा करना होगा। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर के प्रारंभ दिनांक को सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर में पहुँच जाना आवश्यक है क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर समाप्ति से पूर्व जाने की अनुमति नहीं दी जायेगी।

शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर दूरभाष : ०१४५-२४६०१६४

: मार्ग :

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेलवे स्टेशन व बस स्टेण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

email:psabhaa@gmail.com

-संयोजक

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

योग-चर्चा और ये लज्जाजनक घटनायें- एक भी दिन ऐसा नहीं जाता जब दूरदर्शन पर बलात्कार की गन्दी और लज्जाजनक घटनाओं के समाचार सुनने को नहीं मिलते। टी.वी. ही बन्द करना पड़ता है। कन्या-पूजन के नाम पर अपनी श्रेष्ठता व धार्मिक विशेषता की डींग मारने वाले देश में ऐसी पशुता तो अंग्रेजों के राज में भी नहीं देखी-सुनी थी। इसके लिये सारा देश दोषी है। सरकार को कोसने से ही बात नहीं बनेगी।

हम दिन-रात योगचर्चा करते हैं। देशभर में योग शिविर लगते ही रहते हैं। बाबा रामदेव और हमारे प्रधानमन्त्री योग के नये-नये कीर्तिमान बनाने की घोषणायें करते रहते हैं। यम-नियमों के बिना योग में हम एक पग आगे नहीं धर सकते। अनाचार, व्यभिचार, क्रूरता और हत्यायें देश के योग-प्रेम की पोल खोल रहे हैं। नेता बोले बिना रह ही नहीं सकते। इस पशुता पर कौन बोलता है? देश में बोलने की सबसे बड़ी मशीन का नाम केजरीवाल साहिब है। यह मशीन इस विषय पर चुप्पी साधे रहती है। योगाचार्य भी सोचें, विचार करें कि पतन के गर्त में जो देश इतना गिर चुका है, इसके लिये दोषी कौन-कौन हैं? ऐसा लग रहा है इस भ्रष्ट व्यवहार, दुष्कर्म में भारत पूरे विश्व को मात देकर आगे हो चुका है। पश्चिम के वैलेण्टाइन डे की आड़ लेकर हम बच नहीं सकते। सिनेमा की, टी.वी. की नग्नता, अश्लीलता भी मुख्य कारण है। रक्तरोदन कहाँ तक करें?

मैक्समूलर की रुग्णता, निधन तथा हीन हिन्दू मानसिकता- श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की संन्यास-दीक्षा शताब्दी वर्ष में हमारा नया ग्रन्थ 'शूरता की शान-स्वामी श्रद्धानन्द' आ रहा है। इसमें आर्यसमाज के इतिहास की पर्याप्त ऐसी सामग्री दी जा रही है जो बड़े-बड़े गवेषकों के लिये नई, प्रेरक तथा चौंकाने वाली होगी। स्वर्गीय क्षितीश कुमार जी का कथन आज रह-रहकर याद आ रहा है कि स्वामी जी महाराज के घटनापूर्ण जीवन से समाज और देश न्याय नहीं कर सका। इसका एक कारण तब यह बताया था कि 'सद्धर्मप्रचारक' के अंक देखे बिना, 'आर्य मुसाफिर' और 'प्रकाश' आदि उर्दू पत्रों का लाभ उठाये बिना सब ने अपनी पुस्तकें रचीं।

इन पत्रों की फाइलें तो छोड़िये हमारे उत्साही और सुयोग्य लेखकों ने महात्मा मुंशीराम जी के अनूठे ग्रन्थ ऋषि के पत्र-व्यवहार का भी उपयोग न किया।

मैक्समूलर के नाम की देशवासी, आर्यसमाजी भी बहुत रट लगाते हैं। उसका निधन सन् १९०० के दसवें मास में हुआ। 'सद्धर्म प्रचारक' में महात्मा जी ने उसकी रुग्णता व निधन पर दो पृथक्-पृथक् सम्पादकीय लिखे। दोनों का ऐतिहासिक महत्त्व है। हमारे ग्रन्थ के छपने के पश्चात् तो 'मैक्समूलर की रुग्णता' आर्यसमाजी वक्ताओं का निश्चितरूप से एक प्रिय विषय बनने वाला है।

महात्मा मुंशीराम जी ने प्रो. मैक्समूलर के ही लेख को उद्धृत करते हुये लिखा है कि जर्मनी के डॉक्टरों ने उसके रोग को जानलेवा बताया था, परन्तु वह उस रोग से एक बार तो बच गया। **वह तब बच कैसे गया?**

मद्रास के एक ब्राह्मण ने वहाँ के एक बड़े मन्दिर के पुजारी से अपने किसी भगवान् से मैक्समूलर की नीरोगता के लिये प्रार्थना करने की गुहार लगाई। उसने कहा, वह हिन्दू नहीं, उसके लिये कुछ कर्मकाण्ड करने पर मेरा पद मुझसे छिन जायेगा। चालाक सुपठित ब्राह्मण ने दक्षिणा आदि का भारी लोभ देकर उससे अपनी बात मनवा ली।

ग्यारह बजे रात को अपने कई ब्राह्मण मित्रों को लेकर वह व्यक्ति मन्दिर में पुजारी के पास प्रार्थना करवाने पहुँचा। जिस मन्दिर में किसी सज्जन, पठित-अपठित हिन्दू को प्रविष्ट तक नहीं होने दिया गया था वहाँ एक ईसाई की नीरोगता के लिये ब्राह्मण पुजारी ने अपनी किसी मूर्ति से प्रार्थना की। उसने भेंट में प्राप्त पर्याप्त सामान मैक्समूलर को ही भेजने के लिये उन्हें लौटा दिया।

मैक्समूलर के लेखानुसार पुजारी के मन्त्रोच्चारण तथा मन्दिर के एक भगवान् की कृपा से वह ठीक हो गया।

वेद, शास्त्रों के अर्थों के अनर्थ करने वाले और पुराणों की, श्री कृष्ण की धज्जियाँ उड़ाने वाले मैक्समूलर ने झट से लेख लिखकर हिन्दूओं को मूर्ख बनाते हुये लिखा कि मैं मद्रासी मूर्ति-हिन्दू भगवान् की कृपा से मरने से बच गया।

कृत्रिम भगवान् ने-पाषाण मूर्ति ने उसे क्या बचाना था वह दो-ढाई मास में ही मर गया। मद्रास के भगवान् और मैक्समूलर के कथन सब झूँठे सिद्ध हुये।

शुद्धि के एक कर्णधार-पं. शान्तिप्रकाश जी- श्रद्धेय पं. शान्तिप्रकाश जी की शास्त्रार्थ महारथी के रूप में तो आर्यसमाज में चर्चा की जाती है, परन्तु शुद्धि आन्दोलन के एक सफल कर्णधार के रूप में आर्य लोग अब उनकी कहीं भी चर्चा नहीं करते। मुसलमान पीरों, फ़कीरों की और दरगाहों द्वारा हिन्दुओं को धर्मच्युत करने की तो खोज-खोज कर कहानियाँ दी जाती हैं। इससे उल्टा मनोबल गिरता है। जब सकारात्मक विचार दिये ही न जावें तो धर्मप्रचार के लिये उत्साह कैसे पैदा हो?

आज हम अति संक्षेप से शुद्धि आन्दोलन के कर्णधार के रूप में पण्डित जी के जीवन का नया पक्ष रखेंगे। पाकिस्तान में पण्डित जी के ग्राम 'कोटा छुट्टा' में सनातन धर्म सभा का एक युवक मन्त्री पहुँचा। आर्य मन्दिर में हाँफता-हाँफता गया। कुछ आर्य मिल गये। सायंकाल का समय था। पूछा, ''क्या आपके जाति-रक्षक पं. शान्तिप्रकाश यहाँ हैं?'' आर्य लोग उसकी घबराहट से समझ गये कि कुछ अनिष्ट होने वाला है। संयोग से पूज्य पण्डित जी अवकाश पर घर आये हुये थे। उन्हें तुरन्त समाज मन्दिर लाया गया।

पता चला कि 'झोक उतरा' का बड़ा भूमिपति हिन्दू कल मुसलमान बन जायेगा। पांच सहस्र लोगों को सहभोज में गोमांस परोसा जायेगा, फिर उसके पीछे सहस्रों और छोटे हिन्दू परिवार मुसलमान बनेंगे। सैंकड़ों मौलवी इस समारोह में भाग लेंगे। बचाओ! बचाओ! कुछ करो।

पण्डित जी ने कहा, उसके मुसलमान बनने से पहले उसे मुझ से मिलवा दो तो बचा सकता हूँ बाद में कुछ नहीं हो सकता। रातों-रात उस गांव में पण्डित जी को कैसे ले जाया जावे। वे दिन ही ऐसे थे। न सड़कें और न बसें। पण्डित जी साइकिल चलाना भी नहीं जानते थे। सनातन धर्म के मन्त्री ने कहा, मुझे एक साइकिल ले दो। मैं इन्हें खींचकर ले जाऊँगा। रात होने वाली थी। वे चल पड़े। खेतों में गिरते-उठते दोनों उस ग्राम में पहुँचे। उदास मुरझाए चेहरे, वो हिन्दू जो आर्यसमाज का नाम तक सुनना नहीं चाहते थे आज पं. शान्तिप्रकाश जी की राह देख रहे थे।

पं. जी हिन्दू भूपति के घर पहुँचे। द्वार खटखटाया। उसकी दु:खी पत्नी ने झट से इस आस से द्वार खोला कि मेरे पति को पतन से बचाने वाला कोई आया लगता है। बिना कुछ खाये-पिये पण्डित जी ने उससे धर्म-चर्चा छेड़ दी। रात भर इस युग का लेखराम प्रश्नोत्तर में व्यस्त रहा। प्रात: होते-होते उसने कह दिया, ''मैं मुसलमान नहीं बनूँगा।'' सनातन धर्म के उसी मन्त्री ने आर्यसमाज स्थापित करने की घोषणा कर दी। वही उस समाज का पहला मन्त्री बना। वह पलवल के पास कहीं रहता था। सहस्रों हिन्दू पतित होते-होते बच गये। गोमांस की पार्टी रह गई। मौलवी चेहरे लटकाये घरों को लौटे। कम से कम पाँच सहस्र हिन्दू हमारे फ़कीर बेनज़ीर शान्तिप्रकाश ने अपनी तपस्या व हृदय की आग से बचा लिये।

मौलाना मौदूदी का शिष्य जोशीला रौबीला एक युवा मौलवी हिन्दुओं को मुसलमान बनाने निकला। आर्यसमाज से टकरा गया। बटाला में बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ अभी समाप्त नहीं हुआ था। पं. शान्तिप्रकाश जी ने उसे रात को अपने पास ही ठहरने के लिये मना लिया। रात भर धर्म चर्चा चली। प्रात: होते ही उसकी शुद्धि हुई। नाम पं. मेधातिथि रखा गया। सरदार पटेल ने भी उससे बड़ा काम लिया। हमने भी उनके साथ कार्य किया। वे कैप्टन देवरत्न के मौसा बने। पं. शान्तिप्रकाश जी की सेवाओं का स्वर्णिम इतिहास हम न भूलें।

स्वामी सोमदेव जी का एक अलभ्य लेख- श्री स्वामी सर्वदानन्द जी नवीन वेदान्ती साधु थे। कहीं रुग्ण हो गये। एक राजपूत आर्य की सेवा से रोग मुक्त होकर वहाँ से चलने लगे तो भक्त ने वस्त्र में लपेटकर एक ग्रन्थ भेंट करते हुए ये वचन लिया कि वे इसे अवश्य पढ़ेंगे। जब आगे जाकर सेवक को दिया वचन याद आया तो उसे

खोला। वह तो सत्यार्थप्रकाश निकला, जिससे वह घृणा करते थे। वचन निभाया। स्वाध्याय किया तो ब्रह्म से जीव बन गये। आर्य हो गये। उनकी जीवनी में यह घटना देकर हमने लिखा कि दुर्भाग्य से उस समय उस आर्य का नाम आदि स्वामी जी से आर्यों ने न पूछा और न ही तब खोज की गई।

इस पर बहादुरगढ़ के बहादुर रामविचार महोदय ने व्यंग्य कसा, ''तो आप ही पता कर लेते।'' उसकी बात पर हम क्या कहते? हमने क्या-क्या खोजकर के दिया यह और कोई जानता हो या नहीं, रामविचार जी को बहुत कुछ पता है तभी तो अपने परिचय में स्वामी सोमदेव जी का नाम जोड़ रखा है। श्रीमान् जी को कैसे यह बोध हो गया कि यह श्री स्वामी सोमदेव की नगरी में जन्मा था?

सर्वप्रथम सन् १९५९ में हमारे लेख से देश भर को यह पता चला था। इसकी साक्षी पूज्य महाशय कृष्ण जी का 'प्रताप' में छपा एक सम्पादकीय है जिसमें राजेन्द्र जिज्ञासु का नाम दिया गया। हमीं ने सर्वप्रथम देश भर में उनकी संक्षिप्त जीवनी कुछ नई खोज सहित लिखी व छपवाई। उनकी लेखनी की चर्चा तो बहुत करते रहते हैं, परन्तु एक भी लेख शिक्षा संस्थाओं की डींग मारने वाले आर्यसमाजी खोज न पाये। हम इस कार्य में भी लगे रहे। पूर्वजों का आशीर्वाद फलीभूत हुआ। हमने खोज करते-करते एक दुर्लभ लेख भी खोजकर अनूदित करके छपवा भी दिया। यह लेख पं. लेखराम जी के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में है। इसे हमने अपने खोजपूर्ण ग्रन्थ रक्तसाक्षी पं. लेखराम में छपवा दिया और आर्य मात्र को प्रेरणा दी कि कुछ और भाई भी श्रम करें। स्वामी जी का कोई और लेख भी मिलना चाहिये।

उनके सम्बन्ध में रामप्रसाद बिस्मिल का नाम लेकर गप्पें तो परोसी जाती हैं। उनका कोई लेख आर्य पत्रों में क्रान्तिकारियों की सूचियाँ छपवाने वाले लेखक न खोज सके। परोपकारी परिवार, समस्त आर्यसमाज तथा देशभक्त देशवासियों को यह सूचना देते हुये हमें अपार हर्ष हो रहा है कि स्वामी सोमदेव जी का एक और प्रेरणाप्रद लम्बा लेख हमने खोज लिया है। इसके लिये हम परोपकारी परिवार के सब आर्य युवक पाठकों को बधाई भेंट करते हैं जिनकी ऋषि भक्ति हमें ऐसे-ऐसे कार्यों के लिये प्रोत्साहित करती रहती है। सबसे पहले परोपकारी में ही यह लेख छपेगा।

आर्य जनता धड़कते हृदयों से प्रतीक्षा करे। जब माननीय डॉ. दिनेशचन्द्र जी, मान्य ज्योत्स्ना जी हमें संकेत करेंगे, तब हम इसे अनूदित करके परोपकारी में प्रकाशनार्थ भेज देंगे। थोड़ी प्रतीक्षा करें। इसका प्रचार करें। इसका महत्त्व जानें।

इस लेख का विषय आर्य जनता जानना चाहेगी। इसका विषय भी पं. लेखराम जी आर्यपथिक ही है। लेख की समाप्ति पर स्वामी जी का नाम नहीं दिया। केवल 'एक वजीराबादी' छपा है। वही 'वजीराबादी' नाम से लिखा करते थे। शैली भी उन्हीं की है। हम उनकी लेखन शैली को पहचानते-जानते हैं। बधाई का पात्र परोपकारी परिवार तथा परोपकारिणी सभा है। हम नहीं हैं।

हमारे बड़ों का बड़प्पन-पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी की महानता- महर्षि दयानन्द जी के पवित्र मिशन तथा वैदिक धर्म की रक्षा और साहित्य सृजन के लिये जिन विभूतियों ने अपने जीवन का एक-एक श्वास दिया और सब सुख-साज वार दिया, इनमें श्रद्धेय पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक भी एक थे। उनकी लगन, त्याग-तपस्या, सतत साधना को निकट से देखने का हमें सौभाग्य प्राप्त है। विकलाङ्ग होते हुये वे इतना कार्य कर पाये- यह बड़े गौरव का विषय है।

उन्हें अगली पीढ़ी के अपने प्रेमी युवा विद्वानों के लिये नये-नये विषय सूझते थे। सबका स्नेह से मार्गदर्शन किया करते थे। आपने इस सेवक को समय-समय पर कई कार्य सुझाये और सौंपे। उनकी कृपा से, आशीर्वाद से हम आर्य जाति की ठोस सेवा का सौभाग्य प्राप्त करके यश के भी भागीदार बने।

विनम्रता की पराकाष्ठा उनमें देखी गई। वे महर्षि के पूना प्रवचन की उस समय मराठी पत्र में छपे अंकों की मूल प्रतियों की खोज में लगे थे। इस सम्बन्ध में हमसे पत्र-व्यवहार होता रहता था। हम विचार विमर्श के लिये बहालगढ़ भी जाते रहे। ईश कृपा से वे सब अङ्क उन्हें मिल गये। अब सम्पादन का-अनुवाद का कार्य आरम्भ

हुआ। हम चार वर्ष शोलापुर महाराष्ट्र में रहे, अत: पण्डित जी इस कार्य में हमारे सुझावों व सहयोग को महत्त्व देते थे। हमने उन्हें कहा कि श्री पं. प्रियदत्त जी शास्त्री आपके समीप पानीपत में हैं। वह महाराष्ट्र के एक लगनशील युवा विद्वान् हैं। उनको यदा-कदा बुलाकर इस कार्य में लाभ लिया जाये।

हमें लिखा-''आपके निर्देशों के अनुसार ही यह कार्य होगा।'' ये शब्द पढ़कर सेवक दंग रह गया। उन्हें निर्देश देने वाला मैं कौन? यह उस ज्ञान-समुद्र का बड़प्पन था। यह उनके हृदय की उदारता और विशालता थी। इतनी विनम्रता कि पं. प्रियदत्त जी को आपने बुलाया। हमारे सुझावों को 'निर्देश मानना' यह उस पूज्यपाद की ऋषि के प्रति श्रद्धा का चमत्कार ही तो था। यह पत्र मेरी पुस्तकों में छपता रहा है।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियम और उत्तम सहाय्य के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता। **- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.३१**

सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में प्रवृत्त करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२०

ऋषि मेला २०१७ हेतु स्टॉल आवंटन

प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला २७, २८, २९ अक्टूबर शुक्र, शनि, रविवार २०१७ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्य जगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की स्टॉल लगती हैं। प्रति स्टॉल किराया १००० रु. निर्धारित है। जिसकी राशि पहले जमा होगी उसी क्रम से स्टॉल का आवंटन होगा। जिन महानुभावों को जितनी स्टॉल की आवश्यकता है, उसी अनुरूप राशि बैंक ड्राफ्ट द्वारा या नकद जमा करावें।

स्टॉल सुविधा:- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज**- ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- **१.** स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। **४.** स्टॉल व्यवस्थापक से स्टॉल संख्या, राशि की रसीद दिखाकर प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। **५.** आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नवम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित किया जाएगा। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी।

परोपकारिणी सभा, अजमेर के तत्त्वावधान में
१३४ वाँ ऋषि बलिदान समारोह

दिनांक २७, २८, २९ अक्टूबर २०१७, शुक्र, शनि, रविवार

महापुरुषों का यज्ञमय जीवन हमको प्रत्येक कदम पर प्रेरणा व मार्गदर्शन देता रहता है, जिस कारण हम उनके ऋणी हो जाते हैं। इस ऋण से मुक्त होने का एक ही उपाय है- महापुरुषों की विचारधारा का यथासामर्थ्य प्रचार-प्रसार। विराट व्यक्तित्त्व महर्षि दयानन्द की समग्र मानव जाति ऋणी है। इस ऋण को चुकाने का स्वर्ण-अवसर ऋषि के १३४वें बलिदान वर्ष के उपलक्ष्य में हमको प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर परोपकारिणी सभा भव्य समारोह का आयोजन करने जा रही है।

ऋग्वेद पारायण यज्ञ- 'ऋग्वेद पारायण यज्ञ' की पूर्णाहुति बलिदान समारोह के अन्तिम दिन २९ अक्टूबर को प्रात: १० बजे होगी। यज्ञ के ब्रह्मा **श्री सत्यानन्द वेदवागीश** होंगे। यह यज्ञ ऋषि-उद्यान अजमेर की यज्ञशाला में सम्पन्न होगा।

वेदगोष्ठी - प्रतिवर्ष की परम्परा के अनुसार इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ दिल्ली एवं अनुसन्धान केन्द्र परोपकारिणी सभा के संयुक्त प्रयास से वेदगोष्ठी का आयोजन किया जायेगा। इस गोष्ठी में देश के विविध विद्वान् अपने शोधपूर्ण मौलिक विचार प्रस्तुत करेंगे। इस वर्ष वेदगोष्ठी का विचारणीय बिन्दु है- **वेदों में शिक्षा के सिद्धान्त।** जो विद्वान् गोष्ठी में शोधपत्र प्रेषित करना चाहते हैं, वे १५ अक्टूबर तक सभा के पते पर प्रेषित करवा देवें। २७, २८, २९ अक्टूबर को ऋषि बलिदान समारोह के कार्यक्रमों के साथ-साथ वेदगोष्ठी भी चलती रहेगी। ऋषि-भक्त इसे सुनने का लाभ उठा सकते हैं।

चतुर्वेद कण्ठस्थीकरण वेद प्रतियोगिता- प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली इस प्रतियोगिता में २१ वर्ष तक के छात्र भाग ले सकते हैं। किसी भी वेद को आद्योपान्त स्मरण करके इस प्रतियोगिता में भाग लिया जा सकता है। जो छात्र जिस वेद पर गत वर्षों में पारितोषिक ग्रहण कर चुके हैं, वे उस वेद से अतिरिक्त वेद स्मरण करके भाग ले सकते हैं। २७ अक्टूबर को परीक्षा एवं २८ अक्टूबर को पुरस्कार-वितरण का कार्यक्रम होगा। जो छात्र इस प्रतियोगिता में भाग लेना चाहते हैं, वे अपने-अपने गुरुकुलों, आश्रमों, संस्थानों से आचार्य द्वारा अधिकृत पत्रक पर २-छायाचित्र सहित अपना परिचय १५ अक्टूबर, २०१७ तक आचार्य महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर के पते पर भेज दें।

सम्मान - प्रतिवर्ष विशिष्ट वैदिक विद्वान्, विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को इस समारोह में सम्मानित किया जाता है। इस वर्ष भी सम्मान -समारोह होगा। जिसमें अनेक विद्वान्-विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को सम्मानित किया जायेगा।

अक्टूबर के आरम्भ में अजमेर में हलकी ठंड होने लगती हैं, ऋषि उद्यान खुले में होने से सर्दी का प्रभाव कुछ अधिक रहेगा। रात्रि में कम्बल ओढ़ने जैसी ठण्ड रहेगी। जो समूह में रहना चाहते हैं उनकी निवास व्यवस्था ऋषि उद्यान में होगी और जो अपने निवास की व्यवस्था होटल-धर्मशाला में करवाना चाहते हैं, कृपया वे सभा कार्यालय से पूर्व सम्पर्क कर अग्रिम राशि जमा करवा कर कमरा आरक्षित करवा लें।

सभी से विशेष निवेदन है कि अपने आने की सूचना कम से कम एक सप्ताह पूर्व दे देवें, जिससे संख्या का अनुमान होकर तदनुसार व्यवस्था की जा सके।

सभी से निवेदन है कि १३४वें बलिदान समारोह में अपने परिवार व समाज के सभी कार्यकत्ताओं सहित पधार कर महर्षि को हार्दिक श्रद्धांजलि प्रदान करें, महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने हेतु प्रेरणा उत्साह प्राप्त कर प्रचार-प्रसार को एक नई चेतना प्रदान करें।

ऋषि मेले में आमन्त्रित विद्वान्- प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु-अबोहर,आचार्य विजयपाल-झज्जर, श्री सोमपाल शास्त्री- भूतपूर्व केन्द्रीय कृषि मन्त्री, स्वामी ऋतस्पति-होशंगाबाद, डॉ. ब्रह्ममुनि-महाराष्ट्र, डॉ. वेदपाल-बड़ौत, आचार्या सूर्या देवी- शिवगंज, डॉ. विक्रम कुमार 'विवेकी'-चण्डीगढ़, डॉ. रमेशचन्द्र 'जीवन'- चण्डीगढ़, डॉ. वीरेन्द्र अलंकार-चण्डीगढ़, डॉ. ज्ञानप्रकाश-काँगड़ी, डॉ. रूपकिशोर-काँगड़ी, डॉ. सोमदेव 'शतांशु'-काँगड़ी, डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार-कुरुक्षेत्र, डॉ. कृ ष्णपाल सिंह-जयपुर, श्री सत्यानन्द आर्य- दिल्ली, श्री जगदीश शर्मा-जयपुर, श्री शिवकुमार चौधरी-इन्दौर, श्री जयदेव आर्य-राजकोट, श्री ठा. विक्रमसिंह-दिल्ली, डॉ. उदयन- तेलंगाना, श्री प्रकाश आर्य-महू, श्री सत्यपाल पथिक, प. भूपेन्द्र सिंह आदि।

इस समारोह हेतु आपका आर्थिक सहयोग आयकर की धारा '८०-जी' के अन्तर्गत दिए गये प्रावधान के अनुरूप कर मुक्त होगा। विदेश में निवास कर रहे धर्मप्रेमी सज्जन स्वदेश में होने वाले इस समारोह हेतु मुक्त हस्त से दान देकर देश का गौरव बढ़ाएँ। सभा को भारतीय शासन द्वारा विदेशों से दानस्वरूप दी गई राशि को प्राप्त करने की छूट प्राप्त है। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है। शुभकामनाओं सहित।

गजानन्द आर्य	**डॉ. सुरेन्द्र कुमार**	**ओम मुनि**
संरक्षक	**कार्यकारी प्रधान**	**मन्त्री**

ऐतिहासिक कलम....

प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप

आचार्य उदयवीर शास्त्री

जाति-सबसे मुख्य बात जो विद्यार्थी की योग्यता का निश्चय कराती थी, वह थी उस की जाति। विद्यार्थी के अच्छे जन्म के विषय में अध्यापक को सन्तोष दिलाने के लिये अनेक वर्णन उपलब्ध होते हैं, (परीक्षेत तथा शिष्यानीक्षेत कुलगुणादिभिः, म.भा.१२/३२७/४७।। ब्राह्मणाय सदा देयम्, म. भा. १२/३२७) अनेक स्थलों में शूद्रों को वेद पढ़ाने का निषेध किया गया है (मन्त्रः शूद्रे न विद्यते, म.भा. १२/६०/३७)। फिर भी व्यास के अनुसार सब ही जाति के सदस्यों के लिये, जिन में शूद्रों का भी समावेश हो जाता है, वेदों को सुनाना अथवा अध्यापन द्वारा उन तक वेदों का पहुंचाना स्पष्ट वर्णित किया गया है (श्रावयेच्चतुरोवर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः। वेदस्याध्ययनं यच्च तच्च कार्यं महत् स्मृतम्।। म.भा. १२/३२७/४८-४९)। कतिपय विद्वानों ने शूद्रों के लिये वेदाध्ययन के निषेध को इस आधार पर उचित बताया है कि वेदों को अक्षुण्ण रखने के लिये यह आवश्यक था। क्योंकि अनार्य (शूद्र) उनका शुद्ध उच्चारण करने में असमर्थ रहते थे, और वेद का अभ्यास करने के लिये यह अभीष्ट नहीं था। पर महाभारत के अवलोकन से अवगत होता है कि उस समय शूद्र की धारणा आधुनिक समय की हमारी कल्पना से भिन्न थी। महाभारतकार ने बलपूर्वक कहा है कि शूद्र आर्य जाति से सम्बन्ध रखते थे, और वे द्विजों की ही एक शाखा थे (म.भा. १२/१८८/१-१२)। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं समझनी चाहिये कि प्राचीन समय में आर्य शूद्र वेद के अभ्यास में सम्मिलित किये जाते रहे हैं, फिर भी रामायण-महाभारत का जो स्वरूप आज हमारे सामने है, उसमें अधिक वर्णन यह स्पष्ट करता है कि ये ग्रन्थ शूद्रों को वेद के अध्ययन की अनुमति नहीं देते। फिर भी जो प्रमाण ऊपर उपस्थित किये गये हैं, वे निश्चित ही शूद्रों के विषय में एक उदार स्थिति के सम्भाव्य विचार क्रम की सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

शूद्रों के विशेषाधिकार के पक्ष और विपक्ष के साहित्य को ध्यान से देखा जाय तो यह प्रतीत होता है कि शूद्रों के विषय में जो अकारणक व अविचारपूर्वक निर्णय किये गये, वे सम्भवतः तीन स्थितियों में से होकर प्रसारित हुए। आरम्भ में उनको प्रणव के उच्चारण के लिये निषेध किया गया। दूसरी स्थिति में समस्त वेदाभ्यास से उन्हें अलग रखा गया और उनकी स्थिति यहाँ तक निश्चित कर दी गई कि वे वेदाध्ययन के लिये सर्वथा अनधिकृत हैं। सम्भवतः यह निषेध का क्रम शनैः शनै समस्त धार्मिक अभ्यास तक बढ़ता गया। महाभारत काल में विदुर के कथन से इस विचार की पुष्टि होती है (शूद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे, म. भा. ५/१७७/३३)। शूद्रों के सम्बन्ध में यह दुराग्रह बलवत्तर होता गया और अन्त में विद्यामन्दिर के द्वार शूद्रों के लिये बन्द कर दिये गये। महाभारत में शूद्र के लिये कहा गया है-'नाधीयीत' (म.भा. ५ . २६-२९) इसी आधार पर महाभारत के अनन्तर काल से एक लोकोक्ति ने जन्म पाया-'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्'। स्त्री और शूद्र को अध्ययन का अधिकार नहीं है। इससे अध्ययनमात्र में शूद्र को अनधिकारी ठहरा दिया गया।

यह एक ध्यान देने की बात है कि महाभारत काल तक द्विज समाज में शूद्रों के प्रति ऐसी भावना का उदय नहीं हो पाया था। जो कुछ भाव जहाँ-तहाँ अंकुरित भी हुए थे, वे बहुत सीमित व उदारतापूर्ण थे। यद्यपि विदुर शूद्र समझा जाता था, पर वह अनेक शास्त्रों में पारंगत था। समाजशास्त्र और राजनीति में पारंगत था। समाजशास्त्र और राजनीति शास्त्र का वह अपने समय में विद्वान् माना जाता था। अनेक कठिन समस्याओं का समाधान उसकी अनुमति के अनुसार किया जाता था, ऐसे कतिपय उल्लेख महाभारत में उपलब्ध हैं। स्वतन्त्र प्रवचन भी उनके अत्यन्त विचारपूर्ण व साधुतापूर्ण होते थे, ऐसी भावना तत्कालीन लेखकों ने प्रकट की है। रामायण (अयो. ६४/३२-३३) में श्रवण कुमार का वर्णन है। यह वैश्य पिता का शूद्रा में उत्पन्न बालक था। भ्रांतिवश दशरथ के बाण से हत हो जाने पर

पिता ने विलाप करते हुए जो बातें कही हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि वह संकर जाति का होता हुआ भी प्रतिदिन शास्त्रों को पढ़ा करता था, प्रात:काल प्रार्थना करता, तथा विधिपूर्वक अग्नि में आहुति दिया करता था। अग्निकर्म से यह प्रकट होता है कि उस समय के समाज में उसको वेद के अध्ययन व अभ्यास का अधिकार था। टीकाकार ने मूल के मन्त्र और सन्ध्या आदि शब्दों की व्याख्या बड़ी चतुरता से 'तन्त्र ग्रन्थों के मन्त्र' आदि रूप में की है। किन्तु यह व्याख्या वस्तुत: रामायणकार के समय की अपेक्षा टीकाकार के समय की विचारधारा के झुकाव को अधिक चित्रित करती है। टीकाकार जिन तन्त्र ग्रन्थों का यहाँ संकेत करना चाहता है, रामायणकाल में उनका अस्तित्व भी सम्भव था या नहीं, इस पर भी उसने ध्यान देने की अपेक्षा नहीं समझी।

इन सब स्थितियों के आधार पर, शूद्रों के अध्ययन विषयक अधिकार के लिये जो बार-बार निषेध लगाया गया है, इससे यह स्पष्ट परिणाम निकलता है कि उस समय शूद्र शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश के अनधिकारी समझे जाने लगे थे। यद्यपि यह भावना महाभारतकाल तक दृढ़ मूल न हो पाई थी।

गुरु शिष्य का सम्बन्ध

पिता के परिवार में स्वाभाविक जन्म की अपेक्षा विद्यार्थी का विद्यालय में प्रवेश अधिक पवित्र माना जाता था। इस को एक दूसरे जन्म के समान महत्त्व दिया गया है। उपनयन व वेदारम्भ संस्कार के समय गुरु के द्वारा शिष्य को गायत्री मन्त्र का उपदेश, इस जन्म का स्वरूप समझा जाता था, यहाँ गुरु अथवा आचार्य पिता तथा गायत्री को माता माना गया है। आचार्य कुल में हुआ यह जन्म छात्र बालक को अमरत्व प्रदान करता था (आचार्यशिष्टा या जाति: सा पुण्या साजरामरा, म.भा. ५/४४/८।। १२/१०८/२०)। पृथ्वी पर गुरु से अधिक आदर का अधिकारी कोई नहीं समझा जाता था। माता-पिता बालक को शारीरिक जन्म देते हैं, परन्तु गुरु अथवा आचार्य आध्यात्मिक जन्म देता है। इसलिये यह दूसरा जन्म आदर और पवित्रता की दृष्टि से पहले को मात दे देता है (गुरुर्गरीयान् पितृतो मातृतश्चेति मे मति:।।तथा-मातृत: पितृतश्चैव तस्मात् पूज्यतमो गुरु:, म.भा. १२/१०८/१८-२०)। प्राचीन समय में गुरु-शिष्य का यह सम्बन्ध पिता-पुत्र जैसा था। रामायण-महाभारत निश्चय के साथ कहते हैं कि अध्यापक को अपने शिष्य से अपने पुत्र के समान प्यार करना चाहिये कि वे अपने अध्यापकों को अपने पिता के समान आदर करें (म. भा. १२/२/११।। १२/३/२८।। रामा., कि.का. १८/ १३-१४) विद्वान् अध्यापक ऊँची विद्या के गंभीर रहस्यों को केवल अपने पुत्रों व शिष्यों के लिये ही स्पष्ट करता था।

उस समय जहाँ धौम्य जैसे अध्यापक थे जो अपने विद्यार्थी से अधिक से अधिक कार्य लेते थे, वहाँ बैद जैसे गुरु भी थे, जिनके हृदय में अपने शिष्यों के लिए अत्यन्त मृदु था। महाभारत से ज्ञात होता है, बैद ने अपने गुरु के कुल में बहुत कष्ट पाया था, यद्यपि विद्याभाव संग्रह और गुरु के आज्ञा-पालन में उसने कोई न्यूनता व उपेक्षा की भावना नहीं आने दी थी, इससे वह इतना प्रभावित था कि अपने शिष्यों के प्रति अल्प कष्ट भी सहन नहीं कर सकता था। महाभारत के प्रारम्भिक भाग में ही वर्णित धौम्य और उनके तीन शिष्यों की कथा गुरु के प्राकृतिक स्वभाव को दिखलाने की अपेक्षा शिष्यों के आज्ञा पालन की भावना और वृद्ध मुनियों की दैवी शक्ति को प्रकट करने के लिये लिखी गई हो, यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है। इस कारण कथा की घटनाओं के आधार पर धौम्य ऋषि के शिष्यों को कष्ट देने के स्वभाव का अनुमान किया जाना अधिक संगत न होगा। वस्तुत: शिष्यों के प्रति कोमल भावना ही उनके हृदयों में सदा विद्यमान रहती थी, फिर भी वे उनको विद्वान् सदाचारी कर्मठ व कष्टसहिष्णु एवं अध्यवसायी बना देना चाहते थे। अविनीत दुर्योधन का उद्धत आचरण होते हुये भी द्रोणाचार्य ने सदा उसको यह कहकर क्षमा किया कि-तू मेरे लिये अश्वत्थामा के समान है, इसलिये तो तू अपने स्वभावशव अवांछनीय भी कहता रहता है, मैं उसे कभी ध्यान में नहीं लाता (म.भा. ७/९४/१९)। व्यास ने अपने शिष्यों को समावर्त्तन के समय यह स्पष्ट आदेश दिया है कि किसी भी छात्र को किसी अवस्था में भी कोई आपत्तिपूर्ण अथवा हानिप्रद आचरण की ओर पग न उठाना चाहिये। जहाँ स्पष्ट विपत्ति सन्मुख हो, उसकी

उपेक्षा करना ही श्रेयस्कर है (म.भा. १२/३२७/४३/४७)। यह संभव है कि कोई अध्यापक अपने शिष्यों के प्रति कुछ असहानुभूतिपूर्ण हो, पर ऐसे संकेत तत्कालीन साहित्य में नहीं के बराबर हैं। अधिकतर गुरुओं ने प्रेम और दयालुता का आदर्श ही प्रस्तुत किया था।

शिष्यों से यह आशा की जाती थी कि वे अपने आचार्यों के प्रति आज्ञाकारी, नम्र और आदरयुक्त बने रहें। उनको चाहिये कि वे अपने गुरु को विश्वसनीय और प्रामाणिक सेवा तथा धार्मिक आचरण के द्वारा सन्तुष्ट करें। अपने अध्यापक के सन्मुख हठ और अविनय एक ब्राह्मण के वध के समान अति निन्द्य पाप समझा जाता था (म.भा. ५/४०/३)। अध्यापक से पूर्ण लाभ उठाने की दृष्टि से विद्यार्थी के लिये यह आवश्यक था कि वह अध्यापक को उद्विग्न न करें, विशेषकर उस अवस्था में जबकि लिखित साहित्य प्रचुर मात्रा में अनुपलब्ध था।

असमर्थ युवकों को अधिक लाभ प्राप्त करने एवं शक्तियुक्त बनने के लिये अध्यापक के प्रति कृतज्ञता की भावना के स्थान पर विद्यार्थी की प्रतिकूल भावना का होना एक महान् अयोग्यता समझी जाती थी। ऐसा न हो कि वह अपने प्रयास में असफल हो जाय, छात्र के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था, कि वह अपने अध्यापक में सम्पूर्ण विश्वास बनाये रखे तथा सेवा में तत्पर रहे। असत्य भाषण, असत्य आचरण, अभिमान, चंचलता और आत्मश्लाघा ये विद्यार्थी के शत्रु माने गये हैं। ये ही अवगुण स्पष्ट रूप से उसको अध्यापक के साथ विरोध एवं संघर्ष में फँसाते हैं, इस प्रकार उत्पन्न अध्यापक की अप्रसन्नता छात्र को इतनी अधिक हानि पहुँचा सकती है, जिसका फिर सुधारना व पूरा होना सम्भव नहीं। गुरु की आज्ञा का उल्लंघन बहुत बड़े पापों में गिना जाता था। उस समय ऐसा विश्वास किया जाता था कि आज्ञा भंग करने वाले विद्यार्थी की मृत्यु के अनन्तर अत्यन्त शोचनीय गति होती है (म.भा. १२/३२१/२९)। यदि कोई अध्यापक शिक्षण कार्य में असमर्थ होता था तो उसका परित्याग करने के लिये विद्यार्थी स्वतन्त्र होता था (म.भा. ५/६८-८०)।

विद्यार्थी की दिनचर्या

गुरुकुल में विद्यार्थी का जीवन तपस्या और आत्मसंयम से युक्त होता था गुरुकुल का क्लेश लोक में एक कहावत बन गया था और विद्यार्थी मांसल शरीर की अपेक्षा अभ्यास से कृश शरीर के लिये गर्वपूर्ण भावना का अनुभव करता था। एक ब्रह्मचारी ने राजा शिवि के सन्मुख उपस्थित होकर कहा था- 'स्वाध्यायेन कर्शितं ब्रह्मचारिणं मां विद्धि' (म.भा. ३/१९७/७-८) अर्थात् मैं एक स्वाध्याय-कृश ब्रह्मचारी हूँ। नारद ने एक स्थल पर छात्रों की प्रशंसा में कहा है-'भैक्ष्यचर्यासु निरताः कृशा गुरुकुलाश्रयाः निस्सुखा निर्धनास्तु ये' (म.भा. १३/३१/२२)। यह स्पष्ट रूप से आदेश था कि ब्रह्मचारी को प्रतिदिन भिक्षा द्वारा लाये हुये अन्न से ही जीवन-यापन करना चाहिये। शिष्यों को खेतों में काम करना पड़ता था और कभी-कभी अवकाश में गुरु के पशुओं की भी देखभाल करनी पड़ती थी। यह केवल गुरु की सेवा के लिये नहीं किया जाता था, प्रत्युत प्रत्यक्ष अनुभव और व्यावसायिक शिक्षा लेने के लिये भी किया जाता था।

आगामी ऋषि मेला

२७, २८, २९ अक्टूबर २०१७, शुक्र, शनि, रविवार

स्थान- ऋषि उद्यान, अजमेर

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है। **-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४**

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, अन्यथा शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। परोपकारी पत्रिका कार्यालय से निरन्तर भेजी जाती है, फिर भी जिन लोगों के पास पत्रिका का कोई अंक प्राप्त ना हुआ हो तो कृपया पत्र या दूरभाष द्वारा हमें सूचित करें, ताकि हम वह अंक पुनः भेज सकें, साथ ही अपने डाकघर में इसकी जाँच आदि भी करें।

धनराशि भेजने हेतु सूचना

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित सभा है एवं उनके कार्यों को आगे बढ़ाने के लिय कृत संकल्प है। सभा द्वारा ऋषि के स्वनानुरूप गुरुकुल, संन्यास एवं वानप्रस्थाश्रम, ध्यान शिविर, वैदिक साहित्य का प्रकाशन, देश में प्रचार, परोपकारी पत्रिका के माध्यम से जन जागरण, भव्य अतिथिशाला, भोजनशाला आदि अनेक प्रकल्पों का संचालन हो रहा है। ये सभी कार्य आर्यजनों के सात्विक दान से ही होते हैं। अतः दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेद, ईश्वर, दयानन्द के इस कार्य में अपना सहयोग अवश्य प्रदान करें।

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उन पर '**परोपकारिणी सभा**' अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्त्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया, राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४१

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित व उपलब्ध नये संस्करण

१. सत्यार्थ प्रकाश में क्या है? **लेखक - प्रो. धर्मवीर,** **प्रकाशक**- परोपकारिणी सभा, अजमेर,
पृष्ठ संख्या- ३२ **मूल्य** - रु. १५/-

प्रस्तुत पुस्तक का डॉ. धर्मवीर जी के युवापन की रचना है। इस पुस्तक को पं. भारतेन्द्रनाथ जी (महात्मा वेदभिक्षु) ने डॉ. धर्मवीर जी से आग्रहपूर्वक लिखवाया था। पहली बार इसे सन् १९७५ में महात्मा वेदभिक्षु जी ने ही प्रकाशित किया था। एक लम्बे अन्तराल के बाद परोपकारिणी सभा ने इसका पुनर्प्रकाशन किया है। इस पुस्तक को पढ़कर नये से नया व्यक्ति सत्यार्थप्रकाश के महत्व को समझ सकता है अर्थात् यह पुस्तक आर्यसमाज के प्रचार में सहायक सिद्ध हो सकती है। आर्य महानुभावों से अनुरोध है कि इसे अधिक से अधिक संख्या में खरीदकर नई पीढ़ी तथा नये लोगों को वितरित करें तथा प्रकाशनों से भी निवेदन है कि अधिक से अधिक संख्या में इसे मंगायें ताकि लोग उसे खरीद सकें। इस ग्रन्थ को पढ़ने से ऋषि दयानन्द के अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को पढ़ने की प्रेरणा मिलती है। सत्यार्थप्रकाश की समस्त विषयवस्तु को इस ग्रन्थ में समाहित किया गया है। पाठक इसे पढ़कर लाभ उठायेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

२. महर्षि दयानन्द का पत्र-व्यवहार (२ भाग में)
मूल्य - रु. ८००/- पृष्ठ संख्या - प्रथम व द्वितीय भाग-६९६+६९६
महर्षि दयानन्द का महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार **मूल्य - रु. ४००/-** **पृष्ठ संख्या - ६१६**

ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रन्थ है। इस संस्करण की यह विशेषता है कि पत्र और उसका उत्तर साथ-साथ दिये गए हैं। आर्य जाति और आर्यावर्त्त के उत्त्थान की महती आकांक्षा ऋषिवर के पत्रों में स्पष्ट झलकती है। माननीय डॉ. वेदपाल जी द्वारा सम्पादित यह ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है। साज-सज्जा और मुद्रण भी उत्तम है। समाप्त होने से पहले- पहले क्रय कर लेवें तो अच्छा रहेगा।

३. 'नवयुग की आहट',महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरितः
मूल्य - रु. ६०/- पृष्ठ संख्या- १९२

१०० से अधिक उपशीर्षकों एवं १३ अध्यायों में लिखा गया ऋषि का यह अनुपम जीवन चरित है। लेखक हैं- ऋषि मिशन के दीवाने, आर्यजाति के प्रहरी, दिल जले आर्य साहित्यकार प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु। पुस्तक में आप जान पायेंगे कि ऋषि का पाखण्ड-खण्डन, सामाजिक दोषों के निराकरण, स्त्री-शिक्षा, अछूतोद्धार, वेदोद्धार, सामाजिक पुनर्जागरण, राष्ट्र-उद्धार के क्षेत्र में क्या योगदान है तथा उनके समकालीन और परवर्ती महापुरुष उनके विषय में क्या कहते हैं।

४. इतिहास की साक्षीः लेखक- प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु **मूल्य - रु. ५०/-** **पृष्ठ संख्या - ९६**

९६ पृष्ठों की इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी के सम्बन्ध में तथ्यात्मक जानकारी दी है। श्रद्धाराम फिल्लौरी के हाथ के लिखे पत्र की एवं अन्य ऐतिहासिक दस्तावेजों की फोटो कापियाँ इसमें दी हैं, जो अन्यथा दुर्लभ हैं।

५. असली महात्मा (हिन्दी) **मूल्य - रु. २००/-** **पृष्ठ संख्या - २४७**

यह पुस्तक मूलरूप से तेलुगु में लिखी गई है। लेखक श्री एम.वी.आर. शास्त्री ने जिस शोधपूर्ण ढंग से और जिस सरसता से इस पुस्तक को लिखा है, उससे दस्तावेजों में रुचि रखने वालों और उपन्यास में रुचि रखने वालों के लिये भी यह एक अतुलनीय ग्रन्थ है। हिन्दी में अनुवाद करते समय श्री जे.एल. रेड्डी ने लेखक के मूल भावों को जिस दक्षता से संजोया है, उससे हिन्दी पाठकों को ये ऐतिहासिक दृष्टि वाला ग्रन्थ किसी उपन्यास से कम नहीं लगेगा।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

लोकोत्तर धर्मवीर-४

- तपेन्द्र वेदालंकार, आई.ए.एस. (से.नि.)

परोपकारिणी सभा की पत्रिका का प्रथम अंक १८८९ में प्रकाशित हुआ था, प्रारम्भ में पत्रिका छमाही प्रकाशित होती थी। सम्पादक सभा उपमन्त्री श्री मोहन लाल वि. पाण्ड्या थे। दूसरे अंक के बाद प्रकाशन बन्द हो गया। १९०६ में पुन: प्रकाशित करने का निर्णय हुआ तथा प्रकाशन की अवधि मासिक निश्चित की गयी। सम्पादक सभा उपमन्त्री श्री भक्तराय थे। दूसरे वर्ष में प्रसिद्ध साहित्यकार पं. पद्मसिंह शर्मा सम्पादक थे, जिन्होंने परोपकारी के आठ अंक निकाले। तीसरे वर्ष छठे अंक के बाद १९०९ में परोपकारी फिर से बन्द हो गया। १९५९ से परोपकारी का तीसरी बार प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और तब से निरन्तर जारी है।

परोपकारी पत्रिका सभा द्वारा घाटे में छापी जा रही थी, अत: यह बात उठी कि पत्रिका घाटे में नहीं छपनी चाहियें, इसको लाभ में लाने के उपाय होने चाहिये। आचार्य धर्मवीर जी ने स्पष्टत: कहा कि लाभ के उपाय होना तो आवश्यक है, परन्तु लाभ हो या न हो, पत्रिका तो छपनी है। सभा व्यापारिक संस्था नहीं है कि लाभ देखे और जो विचारों के प्रसारण का लाभ परोपकारी के माध्यम से हो रहा है, उसकी तुलना में आर्थिक हानि कुछ भी नहीं। यह तो हम सब जानते ही हैं कि आचार्य धर्मवीर जी पर ही पत्रिका के सम्पादन का उत्तरदायित्व था। यह भी सर्वविदित है कि पत्रिका का स्तर उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया था। सुप्रसिद्ध वैदिक इतिहासवेत्ता वर्तमान में सभा के सभासद् श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी के प्रस्ताव पर परोपकारी पत्रिका १ जनवरी २००९ से मासिक के स्थान पर पाक्षिक हो गयी तथा आचार्य धर्मवीर जी ने सहमति देकर इस गुरुतर कार्य को वहन किया तथा पत्रिका का पाक्षिक प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। पत्रिका के लेखों आदि की उत्कृष्टता में कमी नहीं हुई, अपितु वृद्धि हुई। आर्यजन उनके सम्पादकीयों की तो प्रतीक्षा किया करते थे। आज परोपकारी लगभग १५००० की संख्या में प्रकाशित होती है तथा आर्यजगत् में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

सभा का वार्षिक प्रतिवेदन स्वयं स्वीकार करता है कि ऋषि मेले का वार्षिक आयोजन वर्षों से चल रहा है, परन्तु गत वर्षों में यह एक औपचारिकता मात्र रह गया था। कालान्तर में आयोजन ने गति पकड़ी परन्तु आर्यजगत् की आशाओं के अनुरूप नहीं थी। ऋषि उद्यान में प्रवेश करते ही बायीं ओर जहाँ वर्तमान में गोशाला बनी हुई है, वहाँ पीछे की ओर स्थायी स्टेज बना हुआ था, यहीं शामियाना लगाकर वार्षिक उत्सव मनाया जाता था, जिसमें श्रोताओं की संख्या १५०-२०० हुआ करती थी। हाँ, श्रद्धालु वानप्रस्थी व संन्यासी खूब आया करते थे। श्री यतीन्द्र शास्त्री जो लगभग १९८४ से ऋषि उद्यान से जुड़े हुए हैं के अनुसार आर्यवीर दल के युवकों से उत्सव स्थल की घास धर्मवीर जी स्वयं साथ लगकर उखड़वाया करते थे।

पिछले कई वर्षों से ऋषि मेले का स्टेज यज्ञशाला के पास वाले बड़े मैदान में लगता है, भव्य शामियाना लगता है। यद्यपि ऋषि उद्यान का घास का मैदान किसी घर के मैदान से कम नहीं, फिर भी उसके ऊपर कुर्सियाँ व कारपेट आदि बिछाकर बैठने की व्यवस्था होती है। सामने वाले खुले स्थान पर पुस्तकों आदि के स्टॉल लगते हैं। भवनों पर बिजली की झालरें झिलमिलाती हैं। मेले की भव्यता देखते ही बनती है। राजस्थान, हरयाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश आदि उत्तर भारत से आर्य जनों के आने के साथ-साथ नेपाल, केरल, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा, बिहार आदि राज्यों से हजारों आर्य जन श्रद्धापूर्वक ऋषि मेले में आते हैं। ऋषि उद्यान में आवास व्यवस्था कम पड़ती है, अजमेर की धर्मशालाओं, होटलों में आवास की व्यवस्था की जाती है। कोई माने या न माने, परन्तु यह आचार्य धर्मवीर जी का देश भ्रमण करते हुए प्रचार, भाषण व व्यक्तित्व का ही प्रभाव है। इसका श्रेय उन्हीं को जाता है।

संयुक्त मन्त्री के पद पर रहते आचार्य धर्मवीर जी ने अपने गुरु वेदमनीषी पं. रामनाथ वेदालंकार को पत्र लिखा ''.......अधिक से अधिक लोगों तक ऋषि के विचार पहुँचाने

के लिए हमें विचारों को पाठकों की भाषा में सुलभ कराना होगा। आज जो तन्त्र बढ़ रहे हैं, वे अच्छे हैं इसलिए नहीं, अपितु प्रचार में समर्थ हैं इसलिए वे सफलता प्राप्त कर रहे हैं।'' वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए आर्यसमाज को क्या दिशा लेनी चाहिये, यह उन के ऊपर लिखित विचार से स्पष्ट है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए सभा द्वारा वैदिक विद्वानों के प्रवचनों की रिकॉर्डिंग की व्यवस्था की गयी। पहले रिकॉर्डिंग उतनी अच्छी नहीं थी अत: प्रवचनों का संग्रह करने के लिए आधुनिक सुविधाओं युक्त स्टूडियो को लगभग १५ लाख की राशि व्यय करके तैयार किया गया। आज निरन्तर व निर्विघ्न प्रवचनों का संग्रह हो रहा है तथा स्वामी रामदेव जी महाराज के सहयोग से दूरदर्शन पर आर्यजनों के साथ-साथ जन-सामान्य को भी वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध है। यह आचार्य धर्मवीर जी की दूरदर्शिता का ही परिणाम है।

पुरातन पद्धति के विद्वान् होते हुए भी आचार्य धर्मवीर आधुनिक साधनों के समुचित उपयोग के हिमायती थे। उन्होंने महर्षि के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के लगभग सत्तर हजार पृष्ठ स्कैन कराकर कम्प्यूटर पर सुरक्षित कराये, वहीं पुस्तकों के प्रकाशन व विक्रय के कार्य को आगे बढ़ाते रहे। उदाहरणार्थ सभा के ११९ वें प्रतिवेदन के अनुसार ऋषि मेले २०१४ से ऋषि मेला २०१५ तक की एक वर्ष की अवधि में १६ पुस्तकों का प्रकाशन किया गया था तथा इसी वर्ष दिल्ली में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत सरकार द्वारा लगाये जाने वाले विश्व पुस्तक मेले में सभा की ओर से पाँच हजार सत्यार्थ प्रकाश (हिन्दी), दो हजार सत्यार्थ प्रकाश (अंग्रेजी), पाँच हजार ऋषि जीवनी (हिन्दी) तथा चार हजार 'दयानन्द दी ग्रेट' लघु पुस्तिका एवं हजारों की संख्या में दयानन्द ग्रन्थ संग्रह की पुस्तकें नि:शुल्क वितरित की गयीं थीं।

आचार्य धर्मवीर जी ने पं. रामनाथ जी वेदालंकार से मार्गदर्शन चाहा कि ऋषिकृत ग्रन्थों के विदेशी व प्रान्तीय भाषाओं में अनुवाद व प्रकाशन का क्रम क्या रखा जावे आदि। पण्डित जी का मत था कि ऋषि के ग्रन्थों का अनुवाद आसान कार्य नहीं है। बिना सही सम्पादन के अनुवाद नहीं हो सकता। उत्तर में आचार्य धर्मवीर जी ने जो लिखा उससे उनका सभा के प्रति दृष्टिकोण व आशावादिता के प्रति आग्रह स्पष्ट हो जाता है-''मेरे सामने समस्या है कि केवल शास्त्रीय कार्य से सभा को चलाना कठिन है, साधन जुटाने का यत्न करना होगा। साधन जुटाने के लिए जन सम्पर्क की आवश्यकता है।......किन्तु इस भय से कि अनुवाद में भूल हो सकती है काम न करना उचित नहीं लगता।..... अत: उचित के लिए प्रयत्नशील रहने से अधिक कुछ करना सम्भव नहीं लगता।'' यह स्पष्ट है कि वे जन सम्पर्क करते थे साधन जुटाने के लिए , साधन जुटाते थे ऋषि कृत एवं वैदिक साहित्य के प्रचार के लिए। भूल के डर से काम ही न हो, यह उन्हें स्वीकार नहीं था। उन्हें तो उचित के लिए प्रयत्नशील रहते उत्साहपूर्वक कार्य करना आता था और उत्साही के लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं-**सोत्साहस्य हि लोके, न किञ्चिदपि दुर्लभम्।**

सभा ने ऋषि उद्यान में लघु स्तर पर गौशाला प्रारम्भ कर दी थी। आचार्य धर्मवीर जी को सुझाव दिया कि गौशाला के लिए राज्य सरकार से जमीन आवंटन कराना उचित होगा, जिससे भविष्य की आवश्यकता पूरी हो सके तथा चारे आदि की भी व्यवस्था हो सके। उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया, कई जमीनें देखने गये, एक जमीन उन्हें पसन्द आ गयी, परन्तु समस्या यह आ गयी कि परोपकारिणी सभा के विधान में तो गो-पालन है नहीं, अत: एक अन्य संस्था बनाई जावे, जिसको भूमि का आंवटन हो सके। उन्होंने कहा-एक संस्था में दूसरी संस्था बनाया जाना उचित नहीं तथा झगड़े की जड़ है। पूर्व में भी ऐसे उदाहरण हैं जहाँ विवाद हुए हैं अत: संस्था नहीं बना सकते। दूसरा कारण यह रहा कि गायों की संख्या के आधार पर यह आकलन होता था कि कितनी भूमि आंवटन होनी है। उन्होंने कहा हमारे पास इतनी गायें हैं नहीं तथा हम झूँठे आंकड़ों से जमीन नहीं ले सकते। उक्त उदाहरण यह समझने के लिए पर्याप्त है कि उन्हें सभा के भविष्य की कितनी चिन्ता थी तथा वे सभा का निर्विवाद रूप ही देखना चाहते थे। साथ ही सत्य को उन्होंने केवल ग्रन्थों में पढ़ा ही नहीं था, अपितु सांसारिक हानि-लाभ को न देखते हुए वे सत्य को आधार मानकर ही व्यवहार करते थे,

सांसारिक निर्णय लेते थे। आचार्य धर्मवीर जी की प्रेरणा, स्वामी सम्पूर्णानन्द जी के सत्प्रयास से आर्य जगत् के दानवीर भामाशाह सेठ श्री महाशय धर्मपाल जी द्वारा दिये २५ लाख रुपये के दान से ऋषि उद्यान में आज भव्य गौशाला बनी हुई है जिसमें ५० से अधिक गायें हैं, जिनसे प्राप्त दूध गुरुकुल के ब्रह्मचारियों, संन्यासियों एवं सम्मानित अतिथियों को नि:शुल्क दिया जाता है।

ऋषि उद्यान यज्ञशाला में ऋषि बलिदान अर्द्धशताब्दी समारोह से निरन्तर प्रात:-सायं अग्निहोत्र व वेदोपदेश होता आ रहा है। आचार्य धर्मवीर जी के प्रयास से सुरम्यता में वृद्धि हेतु यज्ञशाला का पुनरुद्धार श्री सुभाष नवाल एवं श्री मनोज शारदा के संयुक्त आर्थिक सहयोग से पच्चीस लाख रुपये की लागत से किया गया, जिसमें ग्रेनाइट का फर्श व खम्भे तथा द्वार में जोधपुर पत्थर का प्रयोग कर पुनर्निर्माण हुआ है। यज्ञशाला की भव्यता दर्शनीय है। श्री मनोज शारदा उस परिवार से हैं जिनके पूर्वज आर्यसमाज व परोपकारिणी सभा में प्रारम्भिक काल से ही योगदान देते रहे हैं। श्री हरविलास जी शारदा १८९० में सभासद् बने, १८९३ में संयुक्त मन्त्री तथा कई दशकों तक सभा के मन्त्री पद पर सुशोभित रहे। श्री रामविलास शारदा १९०६ में सभा के न्यासी बने थे। श्री मानकरण जी शारदा व श्री श्रीकरण जी शारदा ने वर्षों परोपकारी सभा के मन्त्री के रूप में कार्य किया। श्री चाँदकरण जी शारदा आर्य समाज के प्रख्यात नेता तथा देशभक्त समाजसेवक थे। राजस्थान की आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना १८८८ में अजमेर में हुई थी। इस सभा के प्रारम्भिक कार्यकर्त्ता श्री हरबख्श जी चंडोक, डॉ. कृष्णलाल जी, मा. वजीरचन्द जी तथा ठाकुर पंचमसिंह जी वर्मा के साथ-साथ श्री हरविलास शारदा तथा श्री रामविलास शारदा जी थे। इस प्रतिष्ठित परिवार के श्री डॉ. प्रकाश शारदा १९७७ से परोपकारिणी सभा के न्यासी हैं।

आचार्य धर्मवीर जी का विचार था कि यदि अनजान से अनजान व्यक्ति भी सहयोग करता है तो उसको यह जंचना चाहिये कि आप जो कर रहे हैं, ठीक कर रहे हैं। ऋषि उद्यान में जितना निर्माण कार्य हुआ है वह अजमेर के ख्यातनाम आर्किटेक्ट श्री माणकचन्द रांका जी द्वारा कराया गया है। रांका जी न तो आर्य समाजी हैं न ही धर्मवीर जी के पुराने परिचित थे-परन्तु आचार्य धर्मवीर के ज्ञानशील, परोपकारी तथा विशेषत: राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत व्यक्तित्व के कारण उन्होंने सभा से पारिश्रमिक या मार्गव्यय आदि की कोई भी राशि नहीं ली।

एक बच्चे का हाथ थामे एक वृद्ध सज्जन सभा कार्यालय आये, धर्मवीर जी उपस्थित नहीं थे, दूसरे दिन वह सज्जन फिर आये, बोले दान देना है, मेरे हाथ में कम्पन है, किसी को बुला दो चैक लिख दे। उन्होंने एक लाख ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह रुपये का चैक हस्ताक्षर किया। धर्मवीर जी ने पूछा-दान का मन कैसे बना? बोले-आप २० वर्ष पहले मेरे घर यज्ञ कराने आये थे। ऐसा था आचार्य धर्मवीर जी का व्यक्तित्व।

समाज-सुधार के लिये वे वानप्रस्थियों की भूमिका को सबसे महत्त्वपूर्ण मानते थे। उनका मत था कि ब्रह्मचारियों को तो अध्ययन में रत रहना उचित है तथा गृहस्थियों के पास गृहस्थ का भार होता है, वे सब पूर्णकालिक प्रचार नहीं कर सकते। वानप्रस्थी को अपनी योग्यतानुसार समाज का कार्य करना चाहिये। वे सुनाया करते थे-एक बार एक सज्जन बोले-हमने वेद नहीं पढ़े, दर्शन नहीं पढ़े, उपनिषद् नहीं पढ़े, हम में वानप्रस्थी बनने की योग्यता नहीं है। वे बोले-योग्यता तो गृहस्थ की भी यह है-

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथा क्रमम्।
अविलुप्त ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ।। मनु।।

गृहस्थ होते समय तो योग्यता देखी नहीं फिर वानप्रस्थ होते समय योग्यता को क्यों देखते हो। तब गृहस्थ कर लिया अब वानप्रस्थ कर लो।

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति जी के अनुसार ''परोपकारिणी में आर्य समाज का रईस मण्डल शामिल था और यही कारण था कि आर्य समाज के प्रजासत्तात्मक संगठन के साथ परोपकारिणी ने कभी ठीक-ठीक मेल नहीं खाया।'' सम्भवत: आचार्य धर्मवीर जी का ध्यान इस पर गया होगा। तभी तो सन् २००० से उनके सभा मन्त्री तथा प्रधान के कार्यकाल में धुरन्धर विद्वानों, आर्य कार्यकत्ताओं, धरातल से जुड़े नेताओं को परोपकारिणी सभा का न्यासी बनाया गया। डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी (२००१), डॉ. दिनेशचन्द्र जी

शर्मा (२००९), आचार्य सत्यजित् जी (२००३), आचार्य विष्वङ् जी (२००५), डॉ. राजेन्द्र जी विद्यालंकार (२०११), प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु जी (२००९), डॉ. ब्रह्ममुनि जी (२००९), पं. विरजानन्द जी (२०१२), डॉ. वेदपाल जी (२०१२), श्री सत्येन्द्र सिंह जी मेरठ (२०१४), श्री कन्हैयालाल आर्य गुड़गांव (२०१४), पं. सत्यानन्द जी वेदवागीश (२०१५), श्री विजयसिंह जी भाटी (२०११), श्री दीनदयाल जी गुप्त (२००९), श्री वीरेन्द्र जी आर्य (२००९), श्री सुभाष जी नवाल (२००१), श्री शत्रुघ्न जी आर्य (२००१) दिग्गज विद्वान्, वैदिक धर्मप्रेमी, ऋषिभक्त इसी समय में परोपकारिणी सभा के सभासद् बने। संभवत: वर्तमान इतिहासकारों की इस विषयक टिप्पणी उत्तम, सकारात्मक व यथार्थ होगी, विपरीत तो नहीं हो सकती। मैं १९९७ से परोपकारिणी सभा का न्यासी हूँ तथा २००० से अन्तरंग का सदस्य हूँ। आचार्य धर्मवीर जी का मुझसे विशेष स्नेह था, वे मुझसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा कर लेते थे। न्यासी निर्धारण के सम्बन्ध में एक बिन्दु तो अवश्य विचारा जाता था कि जिसमें लोकैषणा हो उसे सभा में नहीं लिया जावे, क्योंकि संस्थाओं में झगड़े की शुरुआत लोकैषणा से होती है।

परोपकारी, विलक्षण प्रतिभाशाली, दूरदर्शी, सहृदय, तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी आचार्य धर्मवीर जब ऋषि मेले के अवसर पर ऋषि उद्यान में कहीं भी खड़े होते थे तो वहाँ से गुजरने वाला प्रत्येक श्रद्धालु उनके प्रति नतमस्तक होकर निकलता था, उसके हाथ उनके चरणों की ओर अनायास ही चले जाते थे। कई बार तो साथ खड़े हम जैसे सामान्यों को भी ढेरों अभिवादन मिल जाते थे। प्रणाम हो भी क्यों नहीं-

लौकिकं वैदिकं वाऽपि तथा ऽऽध्यात्मिकमेव च।
आदतीत यतो ज्ञानं, तं पूर्वमाभिवादयेत् ।। मनु.।।

हमने अपने मन में एक विचार किया हुआ था कि जब धर्मवीर जी वृद्ध हो जावेंगे तो हम उनकी सेवा करेंगे। जिससे हम भी उनके अपार ज्ञान-भण्डार में से कुछ थोड़ा-सा प्राप्त कर सकें तथा सन्मार्ग पर चल सकें। क्योंकि-

परिचरितव्याः सन्तो यद्यपि न कथयन्ति सदुपदेशम्।
यास्त्वेषां स्वैरकथास्ता एव भवन्ति शास्त्राणि।।

लेकिन सम्भवत: उन्हें हमारा स्वार्थ पता चल गया था तभी तो उन्होंने यह अवसर हमें दिया ही नहीं तथा असमय ही हम सबको छोड़कर अनन्त की यात्रा पर चले गये। दु:ख तो इस बात का है कि रुग्णता के समय भी सेवा का अवसर नहीं दिया, न ही कोई अन्तिम आदेश ही दिया, जिससे मन कुछ तो तसल्ली कर लेता।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

ओ३म्

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर (राज.) पिन. ३०५००१ दूरभाष– ०१४५–२४६०१६४

वेदगोष्ठी–२०१७

मान्यवर सादर नमस्ते।

आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ सानन्द होंगे। आपको सुविदित है कि सद्भावी विद्वानों के सहयोग से सदा की भांति इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ, दिल्ली तथा अनुसंधान विभाग परोपकारिणी सभा, अजमेर के संयुक्त तत्त्वावधान में ऋषि मेले के अवसर पर वेदगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। इस गोष्ठी में देश के अनेक भागों से पधारे प्रख्यात वैदिक विद्वान् निर्धारित विषयों पर अपने शोधपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। इनमें से चुने हुए शोध–पत्र परोपकारी व वेदपीठ की शोध–पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित किये जाते हैं। जिससे जो लोग गोष्ठी में नहीं आ सकते वे भी लाभान्वित होते हैं। विद्वानों को भी इस विषय पर अधिक विचार करने का अवसर मिलता है। गत २८ वर्षों से गोष्ठी का आयोजन निरन्तर किया जा रहा है। अब तक निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा चुका है:–

१. ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली।	**१२ नवम्बर, १९८८**
२. वेद और कर्मकाण्डीय विनियोग।	**०५ नवम्बर, १९८९**
३. अथर्ववेद समस्या और समाधान।	**२७ नवम्बर, १९९०**
४. वेद और विदेशी विद्वान्।	**१६ नवम्बर, १९९१**
५. वैदिक आख्यानों का वास्तविक स्वरूप।	**०१ नवम्बर, १९९२**
६. वेदों के दार्शनिक विचार।	**२८ नवम्बर, १९९३**
७. सोम का वैदिक स्वरूप।	**१२ नवम्बर, १९९४**
८. पर्यावरण समस्या का वैदिक समाधान।	**०३ नवम्बर, १९९५**
९. वैदिक समाज व्यवस्था।	**०१ नवम्बर, १९९६**
१०. वेद और राष्ट्र।	**२४ अक्टूबर, १९९७**
११. वेद और विज्ञान।	**०९ अक्टूबर, १९९८**
१२. वेद और ज्योतिष।	**१० नवम्बर, १९९९**
१३. वेद और पदार्थ विज्ञान	**०३ नवम्बर, २०००**
१४. वेद और निरुक्त	**१८ नवम्बर २००१**
१५. वेद में इतिहास नहीं	**०१ नवम्बर २००२**
१६. वेद में कृषि व वनस्पति विज्ञान	**३१ अक्टूबर २००३**
१७. वेद में शिल्प	**१९ नवम्बर २००४**
१८. वेदों में अध्यात्म	**११ नवम्बर, २००५**
१९. वेदों में राजनीतिक चिन्तन	**२७ नवम्बर, २००६**
२०. ''वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है''	**१६ नवम्बर, २००७**
२१. वैदिक समाज विज्ञान	**०५ नवम्बर, २००८**
२२. सत्यार्थप्रकाश का ७ वाँ समुल्लास व वेद	**२३ अक्टूबर, २००९**
२३. सत्यार्थप्रकाश का ८ वाँ समुल्लास व वेद	**१२ नवम्बर, २०१०**
२४. सत्यार्थप्रकाश का ९ वाँ समुल्लास व वेद	**०४ नवम्बर, २०११**
२५. महर्षिदयानन्दाभिमत मन्तव्यः वैदिक परिप्रेक्ष्य	**१६ नवम्बर, २०१२**
२६. वेद और सत्यार्थप्रकाश का १२वाँ समुल्लास	**८ नवम्बर, २०१३**
२७.भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**३१ अक्टू. १,२ नव., २०१४**
२८.भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**२०,२१,२२ नव., २०१५**
२९.दयानन्द दर्शन की वेदमूलकता	**४,५,६ नव., २०१६**
३०. वेदों में शिक्षा के सिद्धान्त	**२७,२८,२९ अक्टू., २०१७**

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ- प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***- आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नि:शुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***- अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था नि:शुल्क की जाती है। ***गोशाला***- गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का नि:शुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***- वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा नि:शुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***- इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ नि:शुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***- योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में नि:शुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अत: आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता
(१ से १५ जुलाई २०१७ तक)

१. श्री लक्ष्मण आर्य मुनि, अजमेर २. वैद्य स्वामी दयानन्द गिरि, भिवानी ३. श्रीमती पूर्वा आर्या, बैंगलोर ४. श्रीमती सुषमा प्रकाश दारूरे, कर्नाटक ५. श्री धनजय कुमार, पटना ६. श्री ओमप्रकाश भदौरिया, ग्वालियर ७. श्री लक्ष्मण आर्य मुनि, लखनऊ ८. श्री देवकीनन्दन सराय, गढ़ी जयगंज, अलीगढ़ ९. श्री रमेश मुनि/श्रीमती उषा आर्या, अजमेर १०. डॉ. जितेन्द्र कुमार बयाना, भरतपुर ११. श्री एम.एल. गोयल, अजमेर १२. सुश्री प्रिया व श्री पवन चौहान, अजमेर १३. डॉ. विपुल नवाल, अजमेर १४. श्री अमरीश त्यागी, अजमेर। **- परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता
(१ से १५ जुलाई २०१७ तक)

१. श्रीमती ज्योति वैजनाथ, लातूर २. श्री किशोर कुमार राजौरिया, छिन्दवाड़ा ३. श्री शंकरलाल आर्य, नई दिल्ली ४. श्री विनय आर्य, देवरिया ५. श्रीमती हरप्यारी देवी, दिल्ली ६. श्री विपिन बिहारी सिंह, कानपुर ७. श्री सोम मुनि, जहाजपुर ८. श्री सतीश कुमार रोहिल्ला, यमुनानगर ९. श्री दिलीप सिंह आर्य, कैथल १०. श्री महेन्द्रसिंह, झज्जर ११. श्री लक्ष्मण आर्य मुनि, लखनऊ १२. श्री महावीरसिंह देहरादून १३. श्री शिव कोमल, देवरिया १४. श्री रघुवीर सिंह, नारनौल १५. श्री रमेश मुनि/श्रीमती उषा आर्या, अजमेर १६. श्रीमती कान्ता अग्रवाल, अजमेर १७. श्रीमती मीना देवी व श्रीमती पूर्णिमा देवी, भीलवाड़ा १८. श्री अतुल कुमार गुप्ता, अलवर १९. श्रीमती तरुणा गहलोत, अजमेर २०. श्रीमती कौशल्या देवी, अजमेर २१. श्री रविकान्त कुमार, पटना २२. श्री राजेश त्यागी, अजमेर। **- परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

अन्न-संग्रह

श्री कचरूलाल, हड़मतिया, कुन्डाल २. श्री पृथ्वीराज मूलचन्द, छोटी सादड़ी ३. श्री मोदीराम आर्य, छोटी सादड़ी ४. श्री घीसा लाल प्रभुलाल पाटीदार, सेमरदा ५. श्री विनोद कुमार कमला देवी पारीक, छोटी सादड़ी ६. श्री नानालाल मीणा, मलावदा ७. श्री केसूराम मीणा, मलावदा ८. श्री कैलाश पारीक, मलावदा ९. श्री हंसराज गुर्जर, मलावदा १०. श्री देवी सिंह शंकरलाल आञ्जना, गोमाना ११. श्री श्रीलाल बहादुरलाल आञ्जना, गोमाना १२. श्री रामविला साहू, छोटी सादड़ी १३. उस्ताद आशाराम, छोटी सादड़ी १४. श्री प्यारचन्द साहू, छोटी सादड़ी १५. डॉ. पुष्पेन्द्र उपाध्याय, छोटी सादड़ी १६. श्री हीरालाल, छोटी सादड़ी १७. श्री माँगीलाल व्यास, छोटी सादड़ी १८. श्री बाबू लाल शर्मा, छोटी सादड़ी १९. श्री आशीष आर्य/श्रीमती चन्दा आर्य, छोटी सादड़ी २०. श्री वृद्धीचन्द गुप्त/श्रीमती गीता साहू, छोटी सादड़ी २१. श्री चाँदमल साहू, छोटी सादड़ी २२. डॉ. रमेश मुनि, गोमाना, छोटी सादड़ी २३. श्री दौलत राम/श्रीमती प्रेम देवी साहू, छोटी सादड़ी २४. श्री दिनेश आर्य, छोटी सादड़ी २५. श्री बालमुकुन्द नवाल, गुलाबपुरा २६. श्री ओमप्रकाश तेला, नसीराबाद २७. श्री ब्रजेश राकेश सोनी, पीसांगन, अजमेर २८. श्री रमेश चन्द मूदड़ा, पीसांगन, अजमेर २९. श्री दुर्गाराम गंगवार, जेठाना, अजमेर ३०. श्री नारायण गैना, जेठाना, अजमेर ३१. श्री जयकिशन ईनाणी, ब्रिड़क्यावास, अजमेर ३२. श्री मोहनलाल, निम्बाहेड़ा ३३. श्री प्रकाश धाकड़, निम्बाहेड़ा ३४. श्री भारत आर्य, निम्बाहेड़ा ३५. श्री पृथ्वीराज आञ्जना, चित्तौड़गढ़

शेष भाग पृष्ठ संख्या ३४ पर....

मेरे कुछ असिद्ध स्वप्न

स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती

(गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना के साथ ही महात्मा मुंशीराम जी ने अपने मन में उसके बारे में विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों को लेकर एक कल्पना-चित्र बनाया था, जिसे वे मूर्त रूप देना चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि हमारे देश का भविष्य एवं प्रगति राष्ट्रीय शिक्षा के संघटित होने पर निर्भर है और इसी विश्वास को लेकर वे गुरुकुल का विकास करना चाहते थे, पर किन्हीं परिहार्य/अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण वे वैसा नहीं कर सके, जिसका दु:ख उन्हें जीवन भर सालता रहा और इसी से निराश होकर उन्होंने गुरुकुल छोड़ने का निश्चय किया। उसी समय उन्होंने सद्धर्म प्रचारक में 'मेरे कुछ असिद्ध स्वप्न' शीर्षक से एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में आर्य जनता के समक्ष अपनी मनोव्यथा को व्यक्त करते हुए यह बताया था कि उनके कौन-कौन से 'स्वप्न' अपूर्ण रह गये। इस लेख का न केवल गुरुकुल काँगड़ी, बल्कि समस्त गुरुकुलों के सन्दर्भ में आज भी उतना ही महत्त्व है जितना कि उस समय था। इसी दृष्टि से इसे अविकल रूप में यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। - **सम्पादक**)

स्वप्नावस्था में ही जागृत की सारी तैयारी होती है। इसी अवस्था में योगी परमात्मा की सृष्टि का सौन्दर्य देखना आरम्भ करता है और इसी दशा में साधारण पुरुष का मन कर्म-काण्ड की तैयारी करता है।

गुरुकुल के लिये जिस दिन धन एकत्र करने के लिये मैं घर से निकला था (१२ भादों १९५६ वि. तदनुसार २६ अगस्त १८९९) उसी दिन रेलगाड़ी में बैठते ही कुछ विशेष कल्पनाएँ गुरुकुल सम्बन्धी कार्यक्रम की मैंने कर ली थीं। फिर जब कार्तिक सम्वत् १९५८ में मुझे आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से आज्ञा मिली कि शीघ्र काँगड़ी ग्राम में कुछ अस्थिर मकान बनवा गंगा तट पर गुरुकुल खोल दिया जाये, तब भी २२ फाल्गुन १९५८ की शाम तक गुरुकुल भूमि में पहुँचने से पहले मेरे मन में बहुत से संकल्प उठे थे। उस समय ये सब संकल्प स्वप्नवत् ही थे। उनमें से कुछ तो जागृत में परिणत हो आशा से बढ़कर पूरे हुये, कुछ असिद्ध रहकर अब भी स्वप्नावस्था में ही पड़े हुये हैं। स्वप्नावस्था में पड़े हुये असिद्ध संकल्पों का वर्णन इसलिये कर देता हूँ कि शायद इन्हें कोई सिद्ध करने वाला कर्मवीर निकल आवे और अपने व्यक्तित्व के प्रतिकूल अवस्थाओं के कारण जो मैं न कर सका, उसमें वह कृतकार्य हो जावे।

प्रथम आर्थिक दशा सम्बन्धी कुछ स्वप्न थे जो पूरे न हो सके। आरम्भ में मेरा विचार यह था कि ५० लाख रुपयों (उस समय) का स्थिर कोष जमा करके उसके सूद से ही गुरुकुल का काम चलाया जावे, परन्तु ब्रह्मचारियों को काँगड़ी में ले जाते ही ऐसा चौमुखी युद्ध करना पड़ा कि धन एकत्र करने के लिये बाहर जाना मेरे लिये कठिन हो गया और जिनका इस संस्था को चलाना कर्त्तव्य था, उनमें बहुधा उसको तोड़ने के लिये ही कमर बाँध बैठे। तब धन कौन लाता? फिर शनैः शनैः यह भाव स्थिर हुआ कि रुपयों के स्थिर कोष के स्थान में आमदनी का स्थिर यत्न किया जाये, जिससे यह शिक्षणालय आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ा हो सके। इसके लिये मैंने नीचे लिखे साधन सोचे थे-

(क) एक वर्कशॉप (कारखाना) खोला जाये, जिसमें इंजन लगाकर कई प्रकार के व्यवसाय का काम हो। काँगड़ी ग्राम और उसके आस-पास के जंगल में खैर के वृक्ष बहुत हैं। एक कारखाना कत्था बनाने का खोला जाये। अपने जंगल में ढाक के वृक्ष बहुत हैं उनसे लाख पैदा की जाये, और उन्हीं के फूलों (टेसू) से रंग बनाया जावे। सेमल की रुई इकट्ठी करके बेची जाये। पास के जंगल से शीशम और तनु की लकड़ी सस्ती मिल सकती है। उन लकड़ियों से मेज-कुर्सी आदि सामान बनवाकर बेचा जाये। इनके अतिरिक्त और भी व्यवसाय के कार्य जारी हो सकते थे। स्वामिनी सभा के अधिकारियों से जब बातचीत की तो उन्होंने विरोध ही किया। शिवालिक की पड़ोसी पहाड़ियों पर औषधियाँ बहुत होती हैं और बिना मूल्य मिल सकती हैं। वैद्य के आने पर सभा से आज्ञा चाही गई कि चरक,

सुश्रुत में दिये नुस्खों के अनुसार औषधियाँ बनाकर वैद्यों के हाथ बेचने की आज्ञा दीजिये। हुकुम हुआ कि ना-मन्जूर।

अब सभा ने ऐसी बेरुखी दिखाई तो मैंने एक धनाढ्य पुरुष को व्यवसाय के कामों के लिये धन देने को तैयार कर लिया। धामपुर के रईस रायबहादुर चौधरी रणजीतसिंह जी गुरुकुल देखने आये। कारखाने की बातचीत आते ही उन्होंने मुझसे पूछा कि पूरा कारखाना बनाने के लिये क्या व्यय होगा। मैंने एक लाख का अनुमान बतलाया। उक्त महोदय ने प्रतिज्ञा की कि ५० हजार रुपये वह देंगे, शेष धन इकट्ठा करने का मैं यत्न करूँ, परन्तु जहाँ घर में कलह हो और उल्टी माला फेरी जाती हो वहाँ बाहर से क्या सहायता मिल सकती है। श्रीमान् चौधरी रणजीत सिंह जी गुरुकुल से घर लौटकर दस-पन्द्रह दिनों के अन्दर ही अचानक मृत्यु के ग्रास हुये। यह विचार दिल का दिल में ही रह गया। यदि वह स्वप्न जागृत में परिवर्तित होता तो जहाँ एक ओर गुरुकुल चलाने के लिये स्थिर आय होती, वहाँ ब्रह्मचारियों के आर्थिक भविष्य का प्रश्न भी शायद किसी हद तक हल हो जाता।

(ख) कांगड़ी ग्राम की भूमि १२०० पक्के बीघों के लगभग है। उनमें से केवल अनुमानतः १७५ बीघे में खेती होती है। ३२५ बीघे के लगभग में नाला आदि हैं। १०० बीघे भूमि गुरुकुल की इमारतों के नीचे होगी। शेष ६०० बीघे में से ४०० बीघे को नौतोड़ किया जा सकता है। मैंने कृषि-विभाग इसीलिये खोला था कि उस विभाग के ब्रह्मचारी तो कृषि का सारा काम सीखेगें, परन्तु जो काम (नलाई, कटाई, जुताई इत्यादि) केवल मजदूरी सम्बन्धी होगा वह गुरुकुल के अन्य ब्रह्मचारियों से, उनके खाली समय में कराया जायेगा। पैदावार बढ़ाने के लिये ग्राम में एक कूप लगवाया था। विचार था कि दानियों को प्रेरित करके दस-बारह कूप लगवा कर खेती की पैदावार बढ़ाई जावे। मेरा अनुमान था कि यदि ४०० बीघे और नौतोड़ हो जाये तो वर्ष भर में से नौ महीनों के लिये अनाज वहीं से निकल आया करेगा। ब्रह्मचारियों में जोश भी पैदा कर दिया गया था। कृषि विभाग से विभिन्न ब्रह्मचारी भी आश्रम की वाटिकादि में काम करने लग गये थे, परन्तु प्रबन्धकर्तृ सभा के अधिकारियों की असहानुभूति के कारण यह काम भी न चल सका।

(ग) एक बार ब्रह्मचारियों में यह उत्साह हुआ कि इमारत का काम वे स्वयं (मिस्त्री की सहायता से) कर लिया करें। एक कमरे की तैयारी में बहुत कुछ काम उन्होंने किया भी, परन्तु उनके मार्ग में इतने विघ्न डाले गये और इतना निरुत्साहित किया गया कि उनका जोश ठण्डा पड़ गया और फिर उन्हें इस काम के लिये किसी ने उत्साहित नहीं किया।

(घ) कांगड़ी ग्राम के जंगल से एक वर्ष ईटों के भट्टे के लिये लकड़ियाँ कटवाई गईं। उस वर्ष जंगल की आमदनी तीन हजार से बढ़ गई। मैंने बजट में वह रकम ग्राम की उन्नति के लिये स्वीकार करवाई, साथ ही उपाध्यायों तथा अध्यापकों के लिये निवास स्थान उसी भूमि में बनवाने का विचार किया, जहाँ नया आदर्श ग्राम बनाया जाना था। मैं कई कारणों से गुरुकुल से अलग जा बैठा। मेरे उत्तराधिकारियों ने जहाँ उपाध्याय-गृह गुरुकुल के समीप बना लिये, वहाँ ग्राम के लिये स्वीकार की हुई रकम बिना व्यय हुई ही, वर्ष के अन्त में लैप्स हो गई और उसकी पुनः स्वीकृति न मिली। यदि कृषिकारों के जीवन का सुधार हो जाता तो पैदावार बहुत बढ़ जाती और गुरुकुल का यश भी अधिक विस्तृत होता। एक बार फिर विचार उठा कि स्थिर धन-राशि को जमीन पर लगाना चाहिये। पचास हजार में एक ग्राम बिकता था। उनका नकदी लगान इतना वसूल होता था कि ४० पैसे सैकड़ा मासिक का सूद फैल जाता। नगर का पानी लगता था। यदि उन्नति की जाती तो पैदावार और बढ़ सकती थी। कुछ एक आर्य पुरुषों का पालन भी हो सकता था, परन्तु इस विषय को सभा में पेश करने से ही अधिकारियों ने इन्कार कर दिया। गुरुकुल को तो ५० हजार में ही ग्राम मिलता था। पीछे उसका मूल्य ६० हजार से भी बढ़ गया।

इन सब प्रस्तावों का उत्तर अधिकारियों की ओर से यही था कि यदि इन कामों की आज्ञा लाहौर से दे दी गई तो साधारण सभासद् यह समझेंगे कि सारी शक्ति कांगड़ी को जा रही है। मुझे कहा जाता था कि मेरी बदनामी इस प्रकार की जायेगी कि जो थोड़ी बहुत सेवा धन या तन से

मैंने की है उसके बदले में अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता हूँ। अब यत: ऐसा आक्षेप नहीं हो सकता इसलिये वर्तमान कार्यकर्त्ताओं की आय बढ़ाने के लिये उपरोक्त साधनों को प्रयोग में लाने का यत्न करना चाहिये, यदि वे इसे उचित समझें।

दूसरे ब्रह्मचारियों के शारीरिक स्वास्थ्य तथा उन्नति सम्बन्धी कुछ विचार थे जो स्वप्नावस्था में ही विलीन हो गये। गतकर, फरी, घुड़सवारी और अन्य देशी खेलों का शिक्षक अर्जुन सिंह बहुत उत्तम मिला था। कई कारणों से वह अलग किया गया। कई ड्रिल मास्टर आये और चले गये। अन्त में चैत्र, १९७३ को सरदार फतेहसिंह को रखा गया जो दिल से काम कर रहे हैं। खेलों में तो ब्रह्मचारी अनुराग से सम्मिलित होते हैं और उससे उनकी शारीरिक दशा औरों की अपेक्षा बहुत उत्तम रहती है, परन्तु प्रात:काल का, नसों को संगठित करने तथा शरीर को दृढ़ करने वाला व्यायाम ठीक प्रकार नहीं होता। मुझे आशा थी कि शनै:-शनै: गुरुकुल के स्नातक ही अध्यापन के काम में लग जायेंगे और व्यायाम के स्वयं अभ्यासी ब्रह्मचारियों के प्रात:काल के व्यायाम को ठीक कर देंगे, परन्तु न तो गुरुकुल और उसकी शाखाओं में पढ़ाने के लिये अधिकत: गुरुकुल के स्नातक ही मिले और न ही अन्य सब अध्यापक ऐसे आये जो स्वयं भी व्यायाम-प्रेमी हों।

(क) जिस प्रकार पहिले कुछ वर्षों के अध्यापक स्वयं खूब व्यायाम करते थे और अब भी कोई-कोई ऐसा करते हैं, इसी प्रकार इस समय की सर्वशाखाओं तथा मुख्य गुरुकुल के अध्यापक और उपाध्याय स्वयं व्यायाम को अत्यन्त आवश्यक समझ कर ब्रह्मचारियों के साथ व्यायाम किया करें, तब मेरा स्वप्न फलीभूत होगा।

(ख) शारीरिक-शिक्षा तथा शरीर-रक्षा और उन्नति के सम्बन्ध में बड़ा विचार मैं यह लेकर गुरुकुल में आया था कि रात की पढ़ाई विद्यार्थियों को न करनी पड़े। परमेश्वर ने दिन शरीर और इन्द्रियों से काम लेने को बनाया है और रात इन सबको आराम देने के लिये। यदि अध्यापक ऐसे मिलें जो दिन की पढ़ाई के समय ही विद्यार्थी को सब कुछ उपस्थित करा दें तो रात में पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती और दिन के अन्य समयों में मानसिक परिश्रम का कोई प्रयोजन नहीं रहता। तब आँखों और दिमाग को कमजोरी की शिकायत भी नहीं हो सकती। आरम्भ में दो वर्ष तक तो यह क्रम कुछ चला, शायद इसलिये कि उस समय सर्व नियत विषयों की पढ़ाई का प्रबन्ध न था, परन्तु आगे चलकर जब बड़े-बड़े अध्यापक और प्रोफेसर जमा हो गये तो जितना परिश्रम मैं इस आदर्श को ले जाने में करता, उतनी ही रात को पढ़ाई अधिक होती जाती। शायद इसमें मेरी ही भूल हो, परन्तु यदि गुरुकुल के संचालकों को मेरे प्रस्ताव में कुछ सार दिखाई दे तो आशा है कि वे इस ओर फिर ध्यान देंगे।

तीसरी कुछ कल्पनायें मानसिक-शिक्षा सम्बन्धी थीं। उनमें से बड़ी कमी उचित पाठ्य-पुस्तकों की है। **आज-कल के सभ्यताभिमानी देशों की यूनिवर्सिटियों के पास अपना प्रेस होना अत्यन्तावश्यक समझा जाता है। गुरुकुल की शिक्षाप्रणाली (इस युग के लिये) नई, उसका पाठ्यक्रम नया, उसकी उमंगें नईं, फिर पुस्तकों का संशोधन तथा निर्माण इस शिक्षणालय का एक मुख्य अंग होना चाहिये था।** यही सोचकर मैंने सद्धर्म्म-प्रचारक प्रेस का सारा सामान गुरुकुल के अर्पण कर दिया था। इसी आवश्यकता को लक्ष्य में रखकर गुरुकुल कोष से सहस्रों रुपये व्यय करके प्रिन्टिंग मशीन, इन्जन तथा टाइप का विस्तृत सामान भी मंगाया था। आधुनिक संस्कृत साहित्य की पाठ्य-पुस्तकों में से अश्लील तथा अनुचित भाग निकालकर पुस्तकें तैयार की गईं, वैदिक मैगजीन आदि की सारी अपनी छपाई गुरुकुल में होने लगी, गुरुकुल का यन्त्रालय इन प्रान्तों में केवल इण्डियन प्रेस-प्रयाग से दूसरे दर्जे पर पहुँच गया था, पर अकस्मात् प्रेस-भवन में आग लग गई और दस-बारह हजार का सामान जलकर राख हो गया। प्रेस के जलने के साथ पाठ्य-पुस्तकें छपवाने का प्रश्न भी फिर खटाई में पड़ गया। फिर प्रेस दिल्ली में गया, उसका बड़ा भाग ६५०० रुपये में बेचा गया, और कुछ हैन्डप्रेस और कटिंग मशीन आदि बचाकर फिर से गुरुकुल-प्रेस की बुनियाद पड़ी। उसके पश्चात् दो बार मैंने सभा से कुछ स्वीकृति प्रेस को बढ़ाने के लिये माँगी, परन्तु मुख्य अधिकारियों के कटाक्ष पर कि मैंने सहस्रों रुपये प्रेस में बरबाद करा दिये हैं, मैं अपने प्रस्ताव पर जोर नहीं देता

रहा।

प्रेस का कार्य बढ़ाने से बहुत से अन्य लाभ भी हैं, इसलिये जब वर्तमान मुख्याधिष्ठाता जी की कार्यकुशलता तथा धन-रक्षा की योग्यता पर पूरा भरोसा है तो आशा है कि सभा उनको आठ-दस हजार रुपया व्यय करके प्रेस को बढ़ाने की आज्ञा देगी।

गुरुकुल विश्वविद्यालय और उसकी शाखाओं के लिये उत्तम साहित्य मुद्रित करना तो गुरुकुल यन्त्रालय को विस्तृत करने का फल होगा ही किन्तु उसके साथ ही उससे स्थिर आय भी खासी हो जायेगी।

(ख) गुरुकुल के स्नातकों के लिये आजीविका का प्रबन्ध करने के विचार से ही नहीं, प्रत्युत् उनको जाति और राष्ट्र के लिये अधिक से अधिक फलदायक बनाने के लिये गुरुकुल की आरम्भिक शिक्षा-प्रणाली में ही आयुर्वेद, कृषि और व्यापार शिक्षा का ध्यान रखा गया था। कब से मैं इन विषयों के लिये बल देता रहा हूँ और किस प्रकार की रुकावटें उस प्रयत्न के मार्ग में खड़ी होती रही हैं- इस कहानी से यहाँ कुछ लाभ न होगा। मैंने कृषि-शिक्षा का कार्य आरम्भ भी किया, परन्तु कई कारणों से उसमें अब तक वह कृतकार्यता प्राप्त न हुई जो सहज में ही हो सकती थी। मेरे सामने तो कृषि-विभाग को योग्य उपाध्याय मिल गये हैं। यदि इस विभाग को तोड़ने का प्रयत्न न हुआ तो जहाँ ब्रह्मचारियों को कार्यशील बनाने में सहायता मिलेगी, वहाँ कुछ वर्षों के पीछे इससे आय भी अच्छी होने लग जायेगी।

फिर आयुर्वेद के लिये भी कुछ वर्षों से मैंने प्रस्ताव कर रखा था। जिस वर्ष गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर कविराज योगेन्द्रनाथ सेन एम.ए. आये थे, उसी वर्ष बहुत से धन की भी, आयुर्वेद-विभाग खोलने के लिये प्रतिज्ञायें हुई थीं, कुछ धन वसूल भी हुआ था, और योग्य वैद्य भी मँगा लिये गये थे, परन्तु शासक-सभा के अधिकारियों ने उस विभाग को खुलवाना उचित न समझा। मेरा निश्चय है कि यदि आयुर्वेद-विभाग के साथ ही, एक योग्य डॉक्टर रखकर अनॉटमी, सर्जरी आदि की शिक्षा का भी प्रबन्ध कर दिया जाता तो शायद इस समय तक गुरुकुल के स्कूल ऑफ मेडिसिन को गवर्नमेन्ट का चिकित्सा विभाग प्रमाणित भी कर देता। अब बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आयुर्वेद-विभाग के खोलने का प्रस्ताव गुरुकुल की शासक-सभा ने स्वीकार कर लिया है और यदि इस समय कोई योग्य डॉक्टर भी अपनी सेवा गुरुकुल के अर्पण कर दे तो आशा है कि जहाँ गुरुकुल के स्नातक कलकत्ता, मद्रास आदि भटकते-फिरने से बच जायेंगे, वहाँ बाहर के विद्यार्थी भी इस विभाग से पूरा लाभ उठा सकेंगे।

यह भी सुनने में आया है कि व्यापार तथा महाजनी की शिक्षा के लिये भी पाठविधि तैयार हो रही है। परमेश्वर शासक-सभा को बल प्रदान करें जिससे अधिकारीगण इन कार्यों के चलाने में आलस्य न कर सकें।

आत्मिक शिक्षा-सम्बन्धी जो दिव्य स्वप्न देखकर मैं गुरुकुल में गया था, उनका निरन्तर १६ वर्षों तक काम करते हुये, स्मरण नहीं आता था। उनके संस्कार तो प्रबन्ध के द्वन्द्व-युद्ध से मुक्त होने पर ही पुनः जागे हैं। गुरुकुल-भूमि में पग धरा था यह दृढ़ प्रतिज्ञा करके कि सात वर्षों तक वेदांगों में परिश्रम कर तथा आत्मिक साधनों द्वारा बल प्राप्त करके ऋषि दयानन्द की बतलाई प्रणाली पर वेदाध्ययन में ब्रह्मचारियों की स्वयं सहायता करूँगा और तब आचार्य कहलाने का अधिकारी बनूँगा। गया था अभ्यासी बनने और आत्मिक शक्तियाँ सम्पादन करने, परन्तु गुरुकुल-भूमि में प्रवेश करते ही घोर संग्राम में फँसना पड़ा। जहाँ प्रकृति प्रत्येक प्रकार से अनुकूल थी, जहाँ वेदाज्ञा के अनुकूल हिमालय के पवित्र चरणों में जाह्नवी के किनारे डेरा डालकर आशा थी कि ब्रह्मचर्याश्रम के बड़े बोझ को उठाने के लिये बल मिलेगा, वहाँ मानवी हृदयों की उठाई अशान्ति ने पूर्व के साधनों से प्राप्त बल को भी शिथिल करने के लिये आक्रमण कर दिये। इस विषय में मनुष्यों के प्रति वाणी या लेखनी द्वारा कुछ बतलाया नहीं जा सका। जो कल्पनाओं का मनोहर तथा शान्तिप्रद उद्यान हृदय-भूमि पर बनाया था वह अब स्मरण में आ रहा है। आत्मिक अवस्था को उच्चासन पर ले जाने और वैदिक-ज्ञान को क्रियात्मक बनाने का अवसर, परमेश्वर की कृपा से अब मिलेगा और इस जन्म की तैयारी आगामी जन्म में अवश्य काम आवेगी- इस आशा पर ही मैं काम कर रहा हूँ, परन्तु अपनी मृत्यु के पहिले यदि एक बार यह दृश्य

देख लूँ कि गुरुकुल विश्वविद्यालय के आचार्य पद पर एक ऐसे विद्वान् स्थित हैं जो वेद-ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञान को आचरणों में डालते हुये ब्रह्मचारियों को मनुष्य के परम पुरुषार्थ की ओर ले जा रहे हैं, तो मैं बड़े सन्तोष से आने वाले जन्म की तैयारी कर सकूँगा।

ब्रह्मचारियों की आत्माओं पर नि:स्वार्थ भाव को भली प्रकार अंकित करने तथा उन्हें धर्म और जाति-सेवा के लिये तैयार करने का बड़ा भारी साधन यह समझा गया था कि उनके संरक्षकों पर उनकी पढ़ाई एवं उनके पालन-पोषण का कुछ भी बोझ न पड़े। गुरुकुल की आरम्भिक शिक्षा-विधि की तैयारी के समय से ही मैं इस पर बल देता रहा और इसीलिये नियम धारा ६ के नीचे नोट दिया गया था-'जब कुछ समय में पर्याप्त धन एकत्रित हो जायेगा तो समस्त ब्रह्मचारियों का शिक्षादान तथा उनका पालन-पोषण बिना किसी व्यय लिये किया जायेगा।' मैंने बहुत बार हाथ-पाँव मारे कि पर्याप्त धन (५० लाख रुपये) जमा हो जावे, परन्तु उसके लिये परिश्रम करने का मुझे समय और अवसर ही न मिला। फिर जब संवत् १९६७ में कई कारणों से मैं मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य पद से त्याग-पत्र देकर अलग हुआ तो कुछ सज्जन मित्रों ने मेरी हार्दिक इच्छा को जानकर सर्वथा शुल्क-मोचन पर बल दिया और उनका प्रस्ताव स्वीकृत भी हो गया। फिर जब मुझे पुन: गुरुकुल की सेवा के लिये लौट आने के लिये बाधित किया गया तो शुल्क लगाने का प्रश्न फिर उठ खड़ा हुआ। उस वर्ष तो पुराने प्रस्ताव को भी सभा से दृढ़ता मिली, परन्तु उससे दूसरे वर्ष इस प्रश्न को फिर सभा में रखा गया। यह देखकर कि कुछ काम करने वाले बिना गुरुकुल के ब्रह्मचारियों पर शुल्क लगवाये काम करना छोड़ देंगे, मैंने उस अधिवेशन में सम्मिलित होने से ही बचना चाहा, परन्तु शुल्क के पक्षपातियों की ओर से श्री प्रधान जी ने विश्वास दिलाया कि आठ श्रेणियों तक कोई शुल्क लगाने का विचार नहीं, उससे ऊपर शुल्क लगाने का निश्चय है। मैं तो इस समझौते पर चुप रहा, परन्तु प्रस्तावकर्ताओं ने पूर्ववत् सब श्रेणियों के लिये शुल्क स्वीकार करा लिया। मैंने अपनी निज प्रतिज्ञानुसार मौन धारण किये रखा और सम्मति भी कुछ न दी।

इस समय बिना शुल्क के गुरुकुलों को चलाना असम्भव सा ही हो गया है क्योंकि **जहाँ प्रबन्ध उत्तम हैं और अपने कर्त्तव्य को समझने वाले संचालक हैं वहाँ धन पर्याप्त नहीं, और जहाँ शुल्क न लेने का आडम्बर रचा जाता है वहाँ ब्रह्मचारी तो साधारण भोजनों के लिये भी तरसते हैं और गुरुकुल-भक्त सांसारिक भोगों का आनन्द लूटते हैं।** मेरा यह स्वप्न भी इस जीवन में पूरा होता नहीं दिखता।

गुरुकुल के सम्बन्ध में मेरी एक और प्रबल इच्छा थी जो अपूर्ण रह गई। मेरा विचार था कि प्रत्येक नगर के पास और प्रत्येक पाँच ग्रामों के समूह के मध्य स्थान में प्रारम्भिक शिक्षा के लिये पाठशालाएँ खोल दी जायें, जिनमें बालक गुरुकुल के लिये तैयार किये जायें। चार वर्ष की पाठविधि हो। जनता की सभाएँ बनाकर अनिवार्य शिक्षा का प्रचार किया जाये, जिससे उस उम्र का कोई भी बच्चा (लड़की हो या लड़का) अशिक्षित न रह जाये। गुरुकुलों के सम्बन्ध में तो कई कारणों से मैं इस विचार को अमली सूरत न दे सका, परन्तु यह प्रबल इच्छा अवश्य है कि आर्यसमाज का इतिहास समाप्त करके, धर्म-प्रचार करता हुआ, आर्यभाषा पाठशालाएँ खुलवाने का यत्न करता रहूँ। उन पाठशालाओं में साधारण ज्ञान देने के अतिरिक्त प्रत्येक आर्य बालक और बालिका को वैदिक-धर्म का आवश्यक ज्ञान भी कराया जावे। इस काम के लिये ऐसे धर्मवीरों की आवश्यकता होगी जो वर्तमान समय के अनुचित भोगों को तिलांजलि देकर तप का जीवन व्यतीत करने के लिये तैयार हों। स्वर्गीय महात्मा गोपालकृष्ण गोखले को इस काम के लिये उत्तेजित करने का मैंने प्रयत्न किया था, परन्तु वे कई बार इच्छा प्रकट करके भी मेरी प्रार्थनानुसार एक सप्ताह गुरुकुल में निवास न कर सके और इसलिये हमारी स्कीम पक न सकी।

गुरुकुल सम्बन्धी और भी बहुत-सी मेरी आकांक्षाएँ थीं जो पूरी नहीं हुई, उनके वर्णन से इस समय लेख को बढ़ाना उचित नहीं है। मैंने इन सब असिद्ध स्वप्नों में असफलता का कारण यही समझा था कि गुरुकुल का प्रबन्ध एक ऐसी कार्यकारिणी सभा के अधीन है जिसके सभासदों का गुरुकुल के साथ सीधा सम्बन्ध बहुत कम

रहता है। प्रथम तो आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरङ्ग सभा में सभासद् लिये ही किसी अन्य भाव से जाते हैं, फिर बहुत से गुरुकुल के सच्चे हितैषी (अधिक दान देने वाले, स्नातक, ब्रह्मचारियों के संरक्षक तथा अन्य विद्वान्) इसके नियन्त्रण में भाग नहीं ले सकते और सबसे बढ़कर कमी यह है कि शासक सभा की बैठकें गुरुकुल से दूर होने कारण उसकी आवश्यकताओं को सभासद् दृष्टि में नहीं रख सकते। मैंने गुरुकुल की भलाई इसी में समझी थी कि उसके लिये एक पृथक् नियन्त्रण परिषद् बनाई जावे जिसमें दानियों, स्नातकों तथा अन्य गुरुकुल प्रेमियों के प्रतिनिधि भी लिये जा सकें। मैंने ऐसा प्रस्ताव दस-ग्यारह वर्षों से कर रखा है, परन्तु ऐसा नियम-संशोधन का प्रस्ताव आर्य प्रतिनिधि सभा के उस अधिवेशन में पेश हो सकता है जिसमें सभासदों की उपस्थिति दो-तिहाई से कम न हो। एक बार उपस्थिति (कोरम) ठीक हो भी गई और बहुपक्ष अनुकूल भी था, परन्तु सम्मति लेना दूसरे दिन पर रोका गया और दूसरे दिन कोरम न रहा।

सारा सभ्य संसार इस समय अनुभव कर रहा है कि शिक्षा-प्रणाली पर ही संसार की वर्तमान अशान्ति की औषधि आर्य पुरुषों ने समझ रखी है। बाह्य संसार के कुछ शिक्षक भी इस विषय में आर्यों के साथ सहमत हो चुके हैं। तब गुरुकुल की रक्षा और उन्नति के लिये जो भी उपाय उचित हों उनकी आर्य जनता को उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इसीलिये मैंने आर्यजनता की सेवा में अपने उद्गार उपस्थित करने का यत्न किया है।

आचार्य धर्मवीर जी की स्मृति में स्थिर-निधि

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने परोपकारिणी सभा की स्थापना करते समय तीन उद्देश्य रखे थे-

१. वेद और वेदांगादि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने-कराने, पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने, छापने-छपवाने आदि में, **२**. वेदोक्त-धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक-मण्डली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग कराने आदि में **३**. आर्यावर्तीय अनाथ और दीन मनुष्यों के संरक्षण, पोषण और सुशिक्षा में व्यय करें और करावें।

इन कार्यों को करने के लिये सभा का वर्तमान मासिक व्यय लगभग १२ लाख रुपये है, जो कि आर्यजनों के दान पर ही निर्भर है। परोपकारिणी सभा के कार्यकारिणी अधिवेशन सं. २२९ एवं साधारण अधिवेशन सं. १२० के प्रस्ताव १३ में आचार्य धर्मवीर जी द्वारा प्रारम्भ किये गये बृहत् प्रकल्पों (प्रकाशन, प्रचार, अध्यापन आदि) के लिये आचार्य धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रुपये की स्थिर-निधि बनाने का संकल्प लिया गया है। आर्यजनों से निवेदन है कि इस पुनीत कार्य में अपना अधिक से अधिक सहयोग प्रदान कर आचार्य जी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

मन्त्री

शेष भाग पृष्ठ संख्या २८ पर.... ३६. श्री रवीन्द्र साहू, निम्बाहेड़ा ३७. श्री उमराव सिंह भाटी, निम्बाहेड़ा ३८. श्री अरविन्द आर्य, निम्बाहेड़ा ३९. श्री टीकम बाहेती, निम्बाहेड़ा ४०. श्री कारूलाल आञ्जना, मार्जिनी, चित्तौड़गढ़ ४१. श्री घीसा लाल पाटीदार, गोमाना, छोटी सादड़ी ४२. श्री अमृत लाल आञ्जना, गोमाना, छोटी सादड़ी ४३. श्री जगदीश आञ्जना, गोमाना, छोटी सादड़ी ४४. श्री किशनलाल आञ्जना, गोमाना ४५. श्री भँवरलाल नारायण जी गोमाना ४६. श्री कारूलाल, बसेड़ा, छोटी सादड़ी ४७. श्री ओमप्रकाश आञ्जना, बसेड़ा, छोटी सादड़ी ४८. श्री जगदीश, खेड़ी, आर्यनगर ४९. श्री ताराचन्द, खेड़ी, आर्यनगर ५०. श्री गोपाल जी बद्रीलाल, खेड़ी, आर्यनगर ५१. श्री रामेश्वर जी रामलाल जी, खेड़ी, आर्यनगर ५२. श्री भेरूलाल, खेड़ी, आर्यनगर ५३. श्री भेरूलाल हड़मतिया, छोटी सादड़ी ५४. डॉ. किशोर काबरा, अजमेर ५५. श्री वेदमुनि वानप्रस्थी, खेड़ली, भरतपुर ५६. श्री कन्हैया कबाड़ी, अजमेर ५७. श्री श्याम लाल मित्रा, सिरसा ५८. श्रीमती कमला पाण्डव, पटियाला ५९. श्री वृद्धीचन्द गुप्त, जयपुर।

गुरुकुल के सम्बन्ध में मेरा सपना

प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

रक्षा-बन्धन पर विभिन्न आर्य संस्थाओं में श्रावणी का उत्सव वेद पठन-पाठन के रूप में मनाया जाता है। इसी दिन गुरुकुलों में छात्रों का वेदारम्भ संस्कार करने की भी परम्परा है। यह सोचकर सहसा एक विचार आया कि वैदिक परम्परा जिस गुरुकुल प्रणाली की नींव पर विराजमान है, उसके सम्बन्ध में कुछ सामग्री पाठकों के विचारार्थ दी जाये। इसके लिये स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा लिखित आत्मव्यथा 'मेरे कुछ असिद्ध स्वप्न' शीर्षक से उपलब्ध थी ही (इससे पूर्व लेख) अचानक से प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार जी के स्वलिखित अभिनन्दन ग्रन्थ (सत्य की खोज) का स्मरण आया, जिसमें उन्होंने एक शीर्षक 'गुरुकुल के सम्बन्ध में मेरा सपना' में अपनी इच्छाओं को व्यक्त किया है। स्वामी श्रद्धानन्द जी गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक हैं और प्रो. सत्यव्रत जी उपकुलपति रहे हैं। दोनों ने गुरुकुल पद्धति को जीया है, अतः गुरुकुल पद्धति पर इनके अतिरिक्त और कौन बता सकता है। यद्यपि दोनों लेख गुरुकुल कांगड़ी के विषय में हैं, परन्तु कांगड़ी को माध्यम बनाकर सम्पूर्ण गुरुकुल प्रणाली ही इन विचारों का केन्द्र है। पाठकों के चिन्तनार्थ सादर प्रस्तुत।

-सम्पादक

भूतकाल-जिस संस्था में मैं पढ़ा ही नहीं, पला भी हूँ, उसके सम्बन्ध में मेरा चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। मेरा ही क्या, गुरुकुल काँगड़ी के प्रत्येक स्नातक का इस संस्था के विषय में चिन्तित होना स्वाभाविक है क्योंकि इस संस्था ने स्नातकों को पढ़ाया ही नहीं, पाला भी है। भारत में कोई विरली ही संस्था होगी जिसमें बच्चे सात बरस के लिये जाते हों और जब तक वे पूरी विद्या ग्रहण न कर लें तब तक वे उसी संस्था में जीवन व्यतीत करते हों। कहीं नर्सरी स्कूल हैं तो उन स्कूलों के बच्चे अपनी शिक्षा वहाँ प्राप्त कर आगे दूसरे स्कूल में चले जाते हैं, कहीं प्राइमरी हैं, कहीं मिडिल हैं, कहीं हाई स्कूल हैं, परन्तु जो इनमें पढ़ता है, वह इन्हें छोड़ आगे निकल जाता है, हाई स्कूल छोड़कर कॉलेज चला जाता है। इसके अतिरिक्त उसका आश्रम-वास भी बदल जात है। गुरुकुल ही ऐसी संस्था है, जहाँ मैं तथा मेरे जैसे अन्य स्नातक बचपन में दाखिल हुए, उसी के आश्रम में पढ़े ही नहीं, १४ बरस तक वहाँ रहे भी। ऐसी विलक्षण संस्था का हम स्नातकों के जीवन के साथ सम्बन्ध है। ऐसी हालत में हम लोग इस संस्था के विषय में जो सोच सकते हैं वह दूसरा कौन सोच सकता है। यह बात मैं पुराने स्नातकों की कर रहा हूँ, नयों की नहीं।

आज हम पुराने स्नातक जीवन का बहुत लम्बा रास्ता तय कर चुके हैं। पुराने स्नातकों में से बहुत-से तो दिवंगत हो चुके हैं। जो बचे-खुचे हैं, वे गुरुकुल काँगड़ी के विषय में दो तरह के सपने लिया करते हैं। मैं भी उसी प्रकार के दो सपने लिया करता हूँ। एक सपना वह है जिसमें गुरुकुल की वर्तमान दशा को देखकर जैसा वह था, उसके भूत से उसकी वर्तमान दशा की तुलना किया करता हूँ, दूसरा सपना वह है जिसका मैं अपने कल्पना-जगत् में भविष्य के लिए उसका चित्र खींचा करता हूँ। इस लेख में पहले अपने पहले वाले सपने पर विचार प्रकट करूँगा, फिर दूसरे सपने की रूप-रेखा का काल्पनिक चित्र खीचूँगा।

गुरुकुल क्या था?-जब मैं गुरुकुल में दाखिल हुआ था तब इस संस्था की स्थिति वह थी जो आज पब्लिक स्कूलों की हो गई है। माता-पिता इस दुविधा को लेकर आते थे कि दाखिला मिलेगा या नहीं मिलेगा। मैं आज से ७६ वर्ष पहले गुरुकुल में दाखिल हुआ था। उस समय ६० में से २५ बालक लिये गये थे, जो नहीं लिये गये उनके माता-पिता निराश होकर लौटे थे। जैसे पब्लिक स्कूल में दाखिल करते हुए माता-पिता का यह सपना होता है कि बेटा जिलाधीश बनेगा, कोई बड़ा अफसर बनेगा, वैसे गुरुकुल में दाखिल कराते हुए माता-पिता का यह सपना होता था कि बेटा वेदों का विद्वान् बनेगा, आर्यसमाज का प्रचारक बनेगा, देश का सेवक बनेगा। वह जमाना गुलामी की जंजीरों को काट फेंकने की उमंगों का था, देश की आजादी के रास्ते ढूँढने का था-इसलिये इस प्रकार के सपनों को लेकर अगर माता-पिता बच्चों को गुरुकुल में दाखिल कराते थे तो यह समय की माँग के अनुरूप ही था। गुरुकुल में इन सपनों को साकार बनाने का एक वातावरण था। वहाँ जो कार्यकर्त्ता थे उनका क्रियात्मक जीवन इस वातावरण को दुगुना-चौगुना बल देता था। मुझे उस समय की घटनाएँ स्मरण हो आती हैं जिनसे उस समय के वातावरण पर प्रकाश पड़ता है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर वेदों के स्वाध्याय के लिए उन दिनों गुरुकुल में रहा करते थे। वे क्रान्तिकारी व्यक्ति थे, उनके नाम वारण्ट निकला हुआ था। एक दिन पुलिस की गारद उन्हें गिरफ्तार करने गुरुकुल आ पहुँची और उनके हाथों में हथकड़ी डालकर ले चली। हम लोग थे तो बच्चे, परन्तु पुलिस के साथ भिड़ गये।

हमने कहा, हम उन्हें नहीं ले जाने देंगे। कानून को हम क्या जानते थे? बच्चे जो ठहरे! महात्मा मुंशीराम जी ने समझाया कि हमारी बात नहीं चलेगी, तब जाकर पुलिस का पिंड छूटा। गुरुकुल में इतना क्रान्तिकारी वातावरण था कि इसकी हवा वायसराय तक ही नहीं, इंग्लैण्ड तक पहुँची हुई थी। गुरुकुल एक अभूतपूर्व शिक्षा-संस्था समझी जाती थी। गवर्नर वहाँ आये, वायसराय वहाँ आये, सैक्रेटरी ऑफ स्टेट आये, इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट के मेम्बर आये, रैम्जे मैकडोनाल्ड जो कालान्तर में वहाँ के प्राइम मिनिस्टर बने, वहाँ आये। वे लोग इसलिये आये कि खुद जाकर देखें कि इस अद्भुत संस्था का क्या रूप है, इसे चलाने वाले कैसे हैं, जो इसमें शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं वे कैसे हैं, उनका जीवन कैसा है?

गुरुकुल क्रान्तिकारियों का कोई अड्डा नहीं था, परन्तु उसके विषय में यह भ्रम जरूर था। फिर भी वहाँ के जीवन में एक विलक्षणता अवश्य थी। गुरुकुल का वातावरण देश में उभरते हुये जनजीवन का जीता-जागता नमूना था। गुरुकुल की अन्य विशेषताओं में एक विशेषता यह भी थी कि यहाँ वर्तमान विज्ञान के सब विषय हिन्दी में पढ़ाये जाते थे। एक दिन अंग्रेजी के महापण्डित गोखले का स्थान लेने वाले सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी के प्रमुख श्री श्रीनिवास शास्त्री गुरुकुल पधारे। वे यह जानना चाहते थे कि इकॉनॉमिक्स जैसा जटिल विषय हिन्दी में कैसे पढ़ाया जा सकता है? प्रोफेसर रामदेव जी उन्हें संस्था दिखा रहे थे। प्रोफेसर रामदेव जी से उन्होंने यही सवाल किया। प्रोफेसर रामेदव जी ने कहा-अर्थशास्त्र के छात्रों को आप अर्थशास्त्र का कोई विषय देकर उनसे पक्ष-विपक्ष में बहस करने को कहें और देखें कि उनका ज्ञान 'अंग्रेजीदाँ' लोगों से कम है या ज्यादा। श्री श्रीनिवास शास्त्री ने भारतीय अर्थशास्त्र पर विनिमय-दर (एक्सचेंज-रेट) का क्या प्रभाव है-इस विषय पर विद्यार्थियों के विचार सुनना चाहे और तैयारी के लिए आधे घण्टे का समय दिया। आधा घण्टा बाद विद्यार्थियों ने जो भाषण दिये उन्हें सुनकर श्री श्रीनिवास शास्त्री ने कहा-मैं आज तक जिस भ्रम में था वह आज दूर हो गया। यही कारण है कि उस समय के गुरुकुल के स्नातक डॉक्टर प्राणनाथ हिन्दू विश्वविद्यालय में अपने विषय में मुख्य उपाध्याय बने।

मैं गुरुकुल के वातावरण की बात लिख रहा था। गुरुकुल शुद्ध अर्थों में हम लोगों का घर बना हुआ था। वह ऐसा घर था जहाँ हम बाहर की हर बात को, जो समाज में भेद-भाव उत्पन्न करती है, छोड़ चुके थे। हम न अपने को शर्मा कहते थे, न वर्मा कहते थे। लोग समाजवाद के गीत गाते हैं, पर जात-पाँत उनके नस-नस में बसी रहती है। गुरुकुल में कहा नहीं, किया जाता था। मैं १४ साल गुरुकुल में पढ़ता रहा, परन्तु मुझे अन्त तक नहीं पता चला कि मेरी क्या जाति है, या मेरे सहपाठियों की क्या जाति है। मैं अपने नाम के साथ सिद्धान्तालंकार लगाता हूँ, लोग समझते हैं कि सिद्धान्तालंकार मेरी जाति है। गुरुकुल में सब भाई-भाई थे। एक बार महाराज नाभा गुरुकुल पधारे। महात्मा मुंशीराम जी उन्हें गुरुकुल दिखा रहे थे। महाराजा पूछ बैठे-क्या आपके यहाँ सब जातियों के बालक एक साथ रहते हैं? महात्मा जी ने कहा-क्या आप शक्ल देखकर पहचान सकते हैं कि कौन बालक किस जाति का है? महाराजा ने एक गोरे-चिट्टे बालक को पकड़कर कहा-यह ब्राह्मण का बालक है, एक काले-कलूटे को पकड़कर कहा-यह चमार का बालक है। महात्मा जी ने उत्तर दिया-यहाँ आकर गुरुकुल के रंग में सब रंग उलट जाते हैं। काले रंग का बालक ब्राह्मण का पुत्र था, गोरे वर्ण का बालक निम्न वर्ण का था। गुरुकुल में हम लोग १४ साल रहे, यह मालूम था कि घर से फीस आती है, पर यह किसी को नहीं मालूम था कि गुरुकुल की फीस क्या है, कितनी है? सब साथ खाना खाते थे, सबको एक जैसा खाना मिलता था। यह कोई नहीं जानता था कि कौन अमीर का लड़का है, कौन गरीब का लड़का है। सबके कपड़े एक-समान, सबकी पुस्तकें एक-समान, सबका रहना एक-समान। अगर कोई बालक शारीरिक दृष्टि से कमजोर है, तो डॉक्टर उसके लिए विशेष दूध लिख देता था, भण्डारी उसके लिए विशेष दूध का प्रबन्ध करता था, यह नहीं देखा जाता था कि उसके घर से कितना पैसा आता है-कुल-माता के अन्य पुत्रों के सामन वह कुल-माता का पुत्र था, और कोख से जनने वाली माता जैसा उससे व्यवहार करती, वैसा उससे व्यवहार होता था। अगर किसी के माता-पिता कुछ दे जाते थे, तो उस क्लास के बच्चों को वह फल या मिठाई समान रूप से बँट जाती थी। जिस समाजवाद का नारा देश की सब राजनैतिक पार्टियाँ बुलन्द करती रहती हैं, परन्तु उनका सहस्रांश भी नहीं कर पायीं, वह आज से ५०-६० साल पहले भागीरथी के तट पर स्थापित गुरुकुल काँगड़ी में साकार जीवित था। राजनीति जहाँ परास्त हो रही थी, वहाँ धर्म सफल हो चुका था। 'धर्म सफल हो चुका था' इसलिए कहता हूँ क्योंकि उस संस्था की स्थापना धर्म के दीवानों ने की थी।

अब क्या हो गया?-आज साठ साल बाद मैं अपने गुरुकुल का सपना ले रहा हूँ, गुरुकुल के भूत का। गुरुकुल जो था-उसे अपनी आँखों के सामने लाने का यत्न कर रहा हूँ। जैसा मैंने

कहा, गुरुकुल से मोह स्नातकों के सिवाय किसको हो सकता है? एक भव्य भवन जब खण्डहर बन जाता है, तब भी, जो उसमें रह चुका है वह बार-बार उसकी स्मृति को ताजा करने के लिए उसके दर्शन को जाता है। आज हमारे लिए वह भवन खण्डहर बन चुका है, परन्तु हमारा तो जीवन ही उसमें बीता है, हम उसे कैसे भुला सकते हैं? गुरुकुल को ढहते मैंने देखा। गुरुकुल का क्या बनता है-इसे भुलाकर पार्टियों ने उस पर कब्जा करने के मंसूबे बाँधे। कब्जा किया-परन्तु गुरुकुल को तहस-नहस कर दिया। जिस जातिवाद का गुरुकुल में कभी नाम न सुना था, वह जातिवाद संस्था को ले डूबा। इस संकट से मुक्त कराने के लिए दो-एक संन्यासी सामने आये, आशा बँधी कि पुराना वातावरण, पुराना आदर्शवाद फिर जाग उठेगा, परन्तु इनका हाथ तो संस्था के लिए अभिशाप बन गया। संस्था का जो-कुछ बचा-खुचा था, वह भी जाता रहा।

आज गुरुकुल के भूत-काल का मेरा सपना भंग हो चुका है। ऐसा लगता है, गुरुकुल था ही नहीं, अब तो है ही नहीं। गुरुकुल के भूतकाल की एक दीपशिखा कन्या-गुरुकुल के रूप में देहरादून में जल रही है। वह भी शायद इसलिए कि आचार्य रामदेव जी की बेटी दमयन्ती देवी ने उसे सम्भाला हुआ है। आचार्य रामदेव जी ने कन्या गुरुकुल की आधारशिला रखकर उसे अपने रुधिर से सींचा। गुरुकुल गया तो गया, आज कन्या गुरुकुल अपने आदि-स्रोत गुरुकुल काँगड़ी की याद दिलाने के लिए बचा हुआ है। शायद पार्टीबाजी का कन्या गुरुकुल पर पंजा नहीं जमा, इसलिए बचा हुआ है।

मैं तो अब सोचने लगा हूँ कि मेरे लिए गुरुकुल का अर्थ गुरुकुल काँगड़ी नहीं रहा। गुरुकुल एक मूवमेंट का नाम था, एक विचारधारा, एक वातावरण का नाम था। अब मैं गुरुकुल के भूत के सपने को छोड़कर भविष्य के सपने लेने लगा हूँ। मेरा गुरुकुल के भविष्य के सम्बन्ध में क्या सपना है-यह मैं आगे लिख रहा हूँ।

भविष्यकाल-गत पृष्ठों में मैंने लिखा है कि हम स्नातक लोग क्योंकि गुरुकुल में पढ़े ही नहीं, वहाँ पले भी हैं, इसलिए उसे उजड़ता देखकर सबसे ज्यादा चिन्ता हमीं को होती है। पार्टीबाज आते हैं, चले जाते हैं, प्राय: उजाड़कर ही जाते हैं, उनका जीवन संस्था से ओत-प्रोत नहीं होता, इसलिए संस्था उजड़ भी जाए, तो उन्हें कोई दर्द नहीं होता। गुरुकुल के सम्बन्ध में ऐसा ही हुआ और हो रहा है। प्रश्न यह है कि क्या इस संस्था का कोई भविष्य नहीं रहा?

मैंने अब अपने को इस बात के लिए रजामन्द कर लिया है कि गुरुकुल का वह सपना जो मेरे तथा मेरे समकालीन स्नातकों के जीवन का अभिन्न अंग था, टूट चुका है, इसलिए मैंने यह सपना लेना शुरु किया है कि गुरुकुल का जो कुछ भी बचा-खुचा है उसे भविष्य के लिए क्या दिशा दी जानी चाहिए ताकि ८३ साल से चली आ रही इस संस्था में प्राण-प्रतिष्ठा हो सके और जिस गौरव को यह खो चुकी है वह उसे फिर से प्राप्त हो।

जिन दिनों दून स्कूल की स्थापना होने जा रही थी उन दिनों का मुझे स्मरण है। देहरादून में दून पब्लिक स्कूल के प्रथम हेडमास्टर होकर श्री फुट आये थे। गुरुकुल का नाम उन्होंने सुन रखा था। वे गुरुकुल आये और मेरे साथ उन्होंने घूमकर सारा गुरुकुल देखा, दो घण्टे तक बातचीत करते रहे। उन दिनों गुरुकुल में 'व्रताभ्यास' प्रथा चल पड़ी थी। 'व्रताभ्यास' का यह अर्थ था कि ब्रह्मचारी को नियमपालन, समयपालन, आज्ञापालन, सद्व्यवहार, सदाचार, ब्रह्मचर्य-पालन आदि के अंक उसी तरह दिये जाते थे जिस तरह पढ़ाई के विषयों के दिये जाते हैं। जो व्रताभ्यास में फेल हो जाता था, उसे पढ़ाई ठीक होने पर भी रोक लिया जाता था। इसका आधारभूत विचार यह था कि शिक्षा का उद्देश्य किताबें रटा देने का ही नहीं, मुख्य उद्देश्य चरित्र-निर्माण करना भी है। श्रीयुत् फुट इस बात से बहुत प्रभावित हुए और कहने लगे कि इस पद्धति को वे अपने पब्लिक-स्कूल में चलायेंगे। मैं पिछले दिनों दून स्कूल देखने गया, तो मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि ठीक इस ढंग पर तो नहीं, परन्तु कुछ इसी प्रकार के ढंग पर उन्होंने इस प्रथा को जारी किया था जो अदला-बदली के साथ अब तक वहाँ चल रही है।

क्या होना चाहिए?-गुरुकुल का पुनरुद्धार करना हो तो उसकी सबसे पहली शर्त यह होनी चाहिए कि चरित्र-निर्माण इस संस्था का प्रमुख ध्येय होगा। इस बात को सुनकर लोग हँस पड़ेंगे-यह भी कोई बात है? चरित्र-निर्माण तो हर शिक्षा-संस्था का मुख्य ध्येय है। परन्तु नहीं, मेरी जानकारी में किसी संस्था का मुख्य ध्येय चरित्र-निर्माण नहीं है। सब संस्थाओं का मुख्य ध्येय किताबी शिक्षा देना है, इम्तिहान में पास करा देना है, चरित्र-निर्माण पर किसी का ध्यान नहीं। जिन संस्थाओं में अध्यापक के चरित्र को मुख्यता न दी जाती हो, उनमें विद्यार्थी के चरित्र का निर्माण कैसे हो सकता है? विद्यार्थी को भी पता होना चाहिए कि वह संस्था में इम्तिहान पास करने ही नहीं आया, चरित्र बनाने आया है। है कोई शिक्षा-संस्था जिसके विद्यार्थी ऐलानिया कह सकें कि उनका लक्ष्य चरित्र-निर्माण है?

गुरुकुल के भविष्य के सम्बन्ध में मेरा सपना यह है कि

चरित्र-निर्माण को नींव में रखने की घोषणा करके गुरुकुल को एक उच्च-कोटि की पब्लिक-स्कूलनुमा संस्था बना दिया जाना चाहिए। इस समय 'गुरुकुल' नाम से जो लकीर पीटी जा रही है, उसे एकदम समाप्त कर देने से ही यह सम्भव होगा। गुरुकुल का अतीत महान् उज्ज्वल था। महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) तथा आचार्य रामदेव जी के काल में जो शिक्षक आते थे वे महान् संकल्पों को लेकर आते थे, उनसे शिक्षा प्राप्त कर जो स्नातक निकलते थे वे उच्च-कोटि के होते थे। सारा वातावरण गगनचुम्बी भावनाओं से व्याप्त था। वह सब कुछ अब नहीं रहा। इस कूड़े-कर्कट को साफ करके नये भवन का निर्माण करना होगा।

मैं पब्लिक-स्कूलनुमा उच्च-कोटि के गुरुकुल की बात क्यों कहता हूँ, और पब्लिक-स्कूलनुमा से मेरा क्या अभिप्राय है? **पब्लिक-स्कूलनुमा उच्च-कोटि के गुरुकुल की बात मैं इसलिए कहता हूँ क्योंकि अब बदली हुई परिस्थितियों में हमारा लक्ष्य भी बदल जाना चाहिए। जब देश परतन्त्र था तब हमारे लक्ष्य दूसरे थे, अब देश स्वतन्त्र है तब लक्ष्य वे नहीं रह सकते। तब हम कहते थे कि हमें सरकारी नौकरी नहीं करनी, मिले, तो भी नहीं करनी, हमें विदेशी सरकार को कोई सहयोग नहीं देना, हमें तो मुसीबत झेलकर भी अपना ही रास्ता निकालना है। निकाला हमने-गुरुकुल के स्नातक अपने-अपने क्षेत्र में चोटी तक पहुँचे।** सिर्फ गुरुकुल की शिक्षा पाकर पं. इन्द्र जी मूर्धन्य पत्रकार बने, पं. जयचन्द्र जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति बने, अनेक स्नातक पार्लियामेन्ट तथा विधानसभाओं के सदस्य हुए, पं. विनायक राव विद्यालंकार निजाम सरकार में मन्त्री-पद पर रहे, पं. अमरनाथ विद्यालंकार पंजाब सरकार के शिक्षा-मन्त्री बने, पं. सोमदत्त विद्यालंकार खादी कमीशन के चेयरमैन बने, पं. सत्यदेव विद्यालंकार सफल उद्योगपति बने, पं. रमेश बेदी फिल्मी दुनिया में बी.बी.सी. द्वारा सम्मानित हुए। हिन्दी पत्रकारिता में तो गुरुकुल के स्नातकों की भरमार है। उनके पीछे उन्हें उठाने वालों का हाथ होता तो आज के सभी पत्रों के वे मुख्य सम्पादक होते। पं. आनन्द विद्यालंकार तथा पं. क्षितीश वेदालंकार के साथ अन्य वेदालंकार, विद्यालंकार पत्रकारों की लम्बी पंक्ति है। आर्य समाज के क्षेत्र में पं. बुद्धदेव विद्यालंकार जैसा कोई व्याख्याता नहीं हुआ, पं. जयदेव विद्यालंकार जैसा कोई वेद-भाष्यकार नहीं हुआ। पं. सत्यकाम विद्यालंकार ने चारों वेदों का अंग्रेजी में भाष्य कर दिया। विद्यामार्तण्ड पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति ने अपनी वैदिक विद्वत्ता से, संस्कृत तथा अंग्रेजी के ज्ञान से सनातनी विद्वन्मण्डली में हलचल मचा दी। विश्वविद्यालयों में बिना सहारे, अपनी योग्यता के आधार पर पं. प्राणनाथ विद्यालंकार, पं. ईश्वरदत्त विद्यालंकार, पं. सत्याकाम वर्मा तथा पं. अनुपम विद्यालंकार ने हिन्दी तथा संस्कृत में मुख्य विभागाध्यक्ष का पद प्राप्त किया। पं. सत्यकेतु विद्यालंकार, पं. हरिदत्त विद्यालंकार का नाम इतिहास के क्षेत्र में गर्व से लिया जाता है। परन्तु यह सब कहानी उन दिनों की है जब गुरुकुल शुद्ध अर्थों में गुरुकुल था, जब गुरुकुल के स्नातकों को जीवन के संघर्ष में विदेशी सरकार से कोई सहारा नहीं लेना था, अपने बूते अपना रास्ता निकालना था, जब उन्हें शिक्षा-दीक्षा देने वाले उच्च-कोटि के शिक्षक थे।

आज स्थिति बदली हुई है। गुरुकुल का आज का वातावरण, आज के कार्यकर्त्ता ऐसे नहीं हैं कि गुरुकुल की भावना को समझ सकें। पार्टीबाजों ने उन्हें वहाँ लाकर बैठा दिया है। उनके सामने कोई लक्ष्य नहीं, कोई योजना नहीं। गुरुकुल का हित इसमें है कि सब काम नये सिरे से किया जाये। इसे एकदम बन्द करके नये गुरुकुल को जन्म दिया जाये, **जिसमें उच्च-कोटि के शिक्षक हों, जिसमें ऐसे विद्यार्थी तैयार किये जायें जो उच्च-से-उच्च सरकारी पदों को प्राप्त करने की आई.ए.एस. तथा आई.पी.एस. आदि परीक्षाओं में बैठें, जो मजिस्ट्रेट हो सकें, पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्ट हो सकें, रेलवे के उच्च अधिकारी हो सकें, जज हो सकें। इस स्वतन्त्र देश का जो ऊँचा-से-ऊँचा सरकारी पद है उसे प्राप्त कर सकें।**

पब्लिक स्कूलों के प्रति लोगों का मोह क्यों है? इसलिए मोह है क्योंकि वहाँ शिक्षा पाकर विद्यार्थी का जीवन में रास्ता खुल जाता है। इसका यह मतलब नहीं है कि दूसरों का नहीं खुलता। पब्लिक स्कूलों में विद्यार्थी कम लिये जाते हैं, शिक्षक उच्च-कोटि के होते हैं, विद्यार्थियों पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। गुरुकुल भी कभी ऐसा ही था, अब भी वैसा ही बनाने की जरूरत है, भेद इतना ही है कि शिक्षकों का स्टेण्डर्ड ऊँचा किया जाये, शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थियों को व्यावहारिक जीवन में सफल बनाना हो जाये। इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें धार्मिक शिक्षा न दी जाये। **धार्मिक शिक्षा देकर आर्यसमाज का प्रचारक बनाना एक बात है और हर विद्यार्थी को धर्म की शिक्षा देना दूसरी बात है।** प्रचारक बनाने के लिए संस्था में एक अलग विभाग रखा जाये, व्यावहारिक जीवन में विद्यार्थियों को सफल बनाने के लिए एक दूसरा

विभाग रखा जाये। **इस गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी सफल प्रचारक भी हों, सफल सरकारी कर्मचारी भी हों। यह कह देना कि सफल सरकारी कर्मचारी बनने से कौन रोकता है, मेरी बात को न समझना है। मैं तो कहता हूँ कि हमें गुरुकुल की शिक्षा को ऐसा मोड़ देने की जरूरत है जिससे सरकारी उच्च पदों पर जाने के लिए विद्यार्थी तैयार किये जायें।** ये विद्यार्थी अगर संस्था के धार्मिक वातावरण से प्रभावित होंगे तो जहाँ-जहाँ भी देश में काम करेंगे वहाँ-वहाँ धार्मिक भावना का संचार करेंगे।

मेरा सपना यह है कि इस प्रकार गुरुकुल में जो विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करें वे यहाँ की प्रथा के अनुसार प्रारम्भ से अन्त तक यहीं रहें, ब्रह्मचर्य तथा तपस्या का जीवन व्यतीत करें। **वे हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी-तीनों भाषाओं का बोलचाल में ऐसा प्रयोग कर सकें जैसे अपनी मातृभाषा का प्रयोग किया जाता है। इस गुरुकुल में गिने-चुने ऐसे शिक्षक रखे जायें जो अपने क्षेत्र में उच्चकोटि के हों, जिनके सम्पर्क में आकर विद्यार्थी उनके प्रति ऐसे आकर्षित हों जैसे लोहा चुम्बक के प्रति आकर्षित होता है।** इन विद्यार्थियों को दो विभागों में शिक्षा दी जा सकती है-प्रचारक-विभाग तथा व्यावहारिक-विभाग। चरित्र-निर्माण को नींव में रखकर इन दोनों विभागों को उच्च स्तर के शिक्षकों द्वारा संचालित करना-यह मेरा गुरुकुल के भविष्य के सम्बन्ध में सपना है।

मेरे इन लेखों के विषय में पाठकों के हृदय में भिन्न-भिन्न शंकाएँ उठ सकती हैं। पब्लिक स्कूल तथा गुरुकुल में क्या भेद होगा, क्या इस संस्था का नाम गुरुकुल ही रहेगा या गुरुकुल पब्लिक स्कूल होगा, गुरुकुल का इतना ऊँचा स्टेण्डर्ड कर देने का खर्च कौन देगा, इतने ऊँचे स्टैण्डर्ड के शिक्षक कहाँ मिलेंगे, आर्यसमाज को ऐसा गुरुकुल खोलने की क्या जरूरत है, अंग्रेजी को इस प्रकार के गुरुकुल में इतना ऊँचा स्थान क्यों दिया जाये, जो इस समय काबिज हैं उनसे कैसे पीछा छूटेगा, अगर चालू गुरुकुल को बन्द कर, गुरुकुल को मेरे सपने पर ढाला जाये तो जो विद्यार्थी पहले पढ़ रहे हैं उनका क्या होगा-ये शंकाएँ हैं जो उठ खड़ी हो सकती हैं। शंकाएँ कहाँ नहीं उठतीं? जहाँ शंका की गुंजाइश नहीं होती वहाँ भी शंकाएँ उठती हैं। शंकाएँ उठती हैं और उनका समाधान भी होता है। मैं तो यह देख रहा हूं कि गुरुकुल उजड़ता जा रहा है, परन्तु उसका किसी को दर्द नहीं। गुरुकुल के स्नातकों को गुरुकुल की वर्तमान अवस्था देखकर दर्द है। वे चाहते हैं-इसका कुछ बने। क्या बने-इस दिशा में मैंने एक विचार दिया है, सोचने वाले सोचें-इस दिशा में भी सोचें, किसी अन्य दिशा में भी सोचें। स्वामी श्रद्धानन्द का लगाया यह पौधा जो कभी लहलहा रहा था, फूल-फल दे रहा था, उसकी जड़ में घुन न लगने दें। **साभार- सत्य की खोज**

शङ्का समाधान - ६

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- समाज में 'करवा चौथ माता' की पूजा का विधान है, क्या ये पूजा वेदानुकूल है? अगर वेदानुकूल है तो इसकी सही प्रकार से पूजा कैसे करें और वेदानुकूल पूजा नहीं है तो इसकी पूजा करने से क्या हानि है? इसी प्रकार गणगौर तीज माता, शीतला माता, देवी माता, लक्ष्मी माता, वैष्णो, करौली आदि माताओं की पूजा के बारे में स्पष्टीकरण करने की कृपा करें।

मुकटबिहारी आर्य, जयपुर।

समाधान- आप द्वारा प्रयुक्त '**समाज**' शब्द हिन्दू धर्म के मूर्तिपूजक वर्ग का परिचायक है। इस समाज में प्रचलित 'करवा चौथ माता' आदि की पूजा के सन्दर्भ में निम्न तथ्य ध्यातव्य हैं-

पूजा शब्द 'पूज पूजायाम्' (चुरादि. उ.) धातु से निष्पन्न है। इसका अर्थ है- पूजा, सम्मान, आराधना, आदर। प्रस्तुत शङ्का में इन (माताओं) की पूजा से तात्पर्य है-आराधना, उपासना, भक्ति। विचारणीय है कि जिनकी पूजा-उपासना की जानी है, उनकी वास्तविक सत्ता भी है अथवा नहीं।

मानवमात्र, जिसका किसी सर्वोच्च सत्ता में विश्वास है, वह अपनी लौकिक कामनाओं की पूर्ति की चाह में उस सत्ता के प्रति विनम्र भाव से वांछित पदार्थों अथवा भावों के पूर्त्यर्थ जो निवेदन-आग्रह करता है, वह पूजा-आराधना है। यह किसी एक देश -धर्म की सीमाओं से बंधा नहीं है, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति अपने-अपने ढंग से यह पूजा-

प्रर्थानाएं करती है। इनमें से अनेक ऐसी सत्ता पर विश्वास रखते हैं, जिसका अस्तित्व सुस्पष्ट होता है। कई बार आराध्य इस प्रकार का होता है, जिसके अस्तित्व या सत्ता को किसी प्रकार सिद्ध करना सम्भव नहीं होता है, अपितु वह केवल उपासक के विश्वास की ही वस्तु होती है। इन देवताओं (शङ्का में उल्लिखित माताओं सहित) के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व हिन्दू देववाद (वैदिक नहीं) को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

वेद के पठन-पाठन तथा चिन्तन-मनन के छूटने का परिणाम यह हुआ कि 'देवता' पद के वास्तविक अर्थ की उपेक्षा कर पृथक्-पृथक् कामना पूर्ति के लिए आराध्य-उपास्य के रूप में पृथक्-पृथक् देवता कल्पित कर लिए गए। कई बार केवल एक कामना को लेकर उसके पूर्ति-कर्त्ता रूप में एक देवता की कल्पना कर ली गई। जैसे-स्त्री द्वारा पति के दीर्घायुष्य की कामना पूर्त्यर्थ ''करवा-चौथ माता''। इस प्रकार के देवता प्राय: क्षेत्रीय (क्षेत्र विशेष में पूज्य रूप में मान्य) देवता कहे जा सकते हैं। इसके उदाहरण रूप में 'वैष्णो' को रखा जा सकता है। कुछ दशक पूर्व तक यह जम्मू तथा पश्चिमोत्तर भारत में मान्य थी। अब इसका विस्तार सम्पूर्ण उत्तर भारत में देखा जा सकता है। इसी प्रकार चिन्तपूर्णी आज भी सीमित क्षेत्र में ही मान्य है। अयप्पा का क्षेत्र केवल दक्षिण भारत है। इस प्रकार सर्वशक्तिमान् एक ईश्वर के स्थान पर छोटे-छोटे कार्यों के लिए अनेक देव कल्पित कर लिए गए हैं। देव शब्द को पुल्लिंग-पुरुषवाची मानकर उसे अपूर्ण मानते हुए स्त्री वाची देव/देवता भी कल्पित किए गए हैं।

'देवता' पद देव शब्द से 'देवात्तल्'-अष्टा. ५.४.२७ सूत्र द्वारा स्वार्थ में तल् तथा 'अजाघतष्टाप्'-अष्टा. ४.१.४ से टाप् प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है।'तलन्त:'-लिङ्गानुशासन से तल् प्रत्ययान्त होने से स्त्रीलिङ्ग (स्त्री देव=देवता) का बोधक है। वेद में देव और देवता (यो देव: सा देवता-निरुक्त ७.४.१५) दोनों पद एक ही गुण (देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा- निरुक्त ७.४.१५-देना, दीप्त होना, दीप्त करना अथवा द्युलोक में स्थित होना) को व्यक्त करते हैं। वेद में ईश्वर को पिता और माता दोनों कहा गया है-

त्वं हि न: पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे।।

-अथर्व. २०.१०८.२

अत: उसे देव और देवता दोनों पदों में से किसी से भी सम्बोधित करने से कोई अन्तर नहीं आता है, किन्तु यह स्मरणीय है कि वैदिक दृष्टि में मात्र देवता पद से सम्बोधित किया जाना उसके उपास्य (उपासना योग्य) होने की गारण्टी नहीं है। किन्तु धार्मिक/पौराणिक साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि वहाँ देव/देवता-दिव्यगुण सम्पन्न शक्तियों को भी पुरुष-स्त्री में विभक्त कर दिया गया है। किसी भी पुरुष देव के साथ उसकी शक्ति के रूप में स्त्री देवता भी कल्पित की गयी है। वस्तुत: यह विभाजन वेदमूलक नहीं है। जब इन देवताओं ''करवा-चौथ माता'' आदि की कल्पना ही अवैदिक है, तब इनकी पूजा किस प्रकार वेदानुकूल कही जा सकती है? अत: इनके समान ही इनकी पूजा भी अवैदिक है।

यहाँ आपका यह प्रश्न-'वेदानुकूल नहीं है तो इनकी पूजा से क्या हानि है?' इस प्रश्न को आप प्रथमत: यह समझें कि जिसका अस्तित्व ही नहीं है, तब उसकी उपासना का क्या फल? इसे योगदर्शन के शब्दों- **'अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या'** (२.५) में अविद्या ही कहा जा सकता है। द्वितीयत: इनकी पूजा भी मूर्तिपूजा ही है। मूर्तिपूजा की जो हानियाँ है, वह सब इन देवताओं-माताओं की पूजा से भी जाननी चाहिएँ। इतिहास की अनेक घटनाएं मूर्तिपूजा के दुष्परिणामों को अच्छी प्रकार से प्रकट करती हैं। ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए सत्यार्थप्रकाश के प्रथम व सप्तम तथा मूर्तिपूजा से हानियों के विषय में एकादश समुल्लास पठनीय हैं।

सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में प्रवृत्त करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२०

०१ से १५ जुलाई २०१७

संस्था - समाचार

जन्मदिवस, विवाह वर्षगाँठ- ऋषि उद्यान की यज्ञशाला में ३ जुलाई को अपने पौत्र पीयूष के जन्मदिन तथा दूसरे पौत्र श्री विवेकशंकर एवं श्रीमती यामिनी की विवाह वर्षगाँठ पर लखनऊ निवासी श्री लक्ष्मण मुनि जी ने यज्ञ किया। ११ जुलाई को अजमेर निवासी श्री दिनेश नवाल एवं राजकुमारी नवाल ने अपने पुत्र डॉ. विपुल नवाल के जन्मदिन पर यज्ञ किया। परोपकारिणी सभा की ओर से इन्हें हार्दिक शुभकामनाएँ।

गुरु पूर्णिमा के अवसर पर **आचार्य कर्मवीर जी** ने भजन सुनाया- 'कभी भी प्रभु का भजन ना किया....'। गायत्री मन्त्र की व्याख्या करते हुए **स्वामी मुक्तानन्द जी** ने कहा कि गायत्री मन्त्र को गुरु मन्त्र, महामन्त्र कहते हैं, क्योंकि इसमें ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों है।

अतिथि- महर्षि दयानन्द चित्र दीर्घा एवं वस्तु प्रदर्शनी देखने, विद्वानों-संन्यासियों से मिलने, यज्ञ-प्रवचन से लाभ लेने, भ्रमण तथा प्रचार हेतु ब्रह्मचारी, संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, गृहस्थ स्त्री-पुरुष-बच्चे आते रहते हैं। पिछले पन्द्रह दिनों में महेन्द्रगढ़, हिसार, अम्बाला, गोवा, भीलवाड़ा, अलीगढ़, गया, गिदड़बाहा, उत्तरकाशी, जयपुर, दिल्ली, अलवर, जौनपुर, आजमगढ़, कोटा, अम्बाला कैन्ट आदि स्थानों से कुल **४१ अतिथि ऋषि उद्यान आये।**

प्रात:कालीन प्रवचन में **आचार्य सत्यजित् जी** ने कहा कि परमात्मा ने हमारे सम्पूर्ण कल्याण के लिए शरीर, बुद्धि, निवास हेतु पृथ्वी आदि सृष्टि के अनेक पदार्थ बनाये हैं। हमारे अधिकांश दुखों का कारण अज्ञानता है। जितना-जितना ज्ञान बढ़ता जाता है दुख कम होता जाता है। अनेक शारीरिक रोग, स्मृति कम होना आदि प्रज्ञा अपराध अर्थात् बुद्धि के दोषों के कारण होता है। संसार में कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है इसलिए एक दूसरे के गुणों, सामर्थ्यों को समझते हुए संतुष्ट रहना चाहिए। ईश्वर ही पूर्ण है उसकी उपासना से ही मनुष्य पूर्ण रूप से सुखी हो सकता है। परस्पर प्रीतिपूर्वक व्यवहार और उपलब्ध साधनों से संतुष्ट रहने पर ही घर-परिवार, समाज, राष्ट्र में सुख, शान्ति होती है।

प्रात:काल प्रवचन में **स्वामी मुक्तानन्द जी** ने कहा कि योग में सिद्धि के दो उपाय हैं- १. पूर्वजन्म के संस्कार, २. इस जन्म के पुरुषार्थ। प्रकृति से जुड़ना भोग है और प्रकृति से अलग होना मोक्ष है। विवेक से मोक्ष प्राप्त होता है। आत्मा और प्रकृति को पृथक्-पृथक् जानना विवेक है। अनादि काल से हमारे चित्त में संगृहीत वासनाओं के संस्कार विवेक प्राप्ति में बाधा हैं। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श का अनुभव हम अपने शरीर से करते हैं। शरीर से पृथक् कुछ भी अनुभव नहीं करते। इसलिए आत्मा और प्रकृति को अलग-अलग अनुभव करने में बहुत कठिनाई होती है। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जब शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं, ऐसा हमें बोध होता है। योगियों को समाधि अवस्था में आत्मा और शरीर की पृथकता का प्रत्यक्ष बोध होता है। सांसारिक लोग मृत व्यक्ति के शरीर को देखकर शरीर और आत्मा के अलग होने का अनुभव स्वाभाविक रूप से करते हैं।

प्रात:कालीन प्रवचन में **आचार्य सोमदेव जी** ने कहा कि ऋषियों ने हम मनुष्यों की उन्नति के लिये हमें धर्म से जोड़ा है। जब तक हम धर्म से जुड़े रहते हैं तब तक हम सुरक्षित रहते हैं, दूसरों की दृष्टि में सम्मानित बने रहते हैं। जैसे ही हम धर्म से दूर होते हैं, असुरक्षित हो जाते हैं, अन्दर से भयभीत हो जाते हैं। ऋषियों के अनुसार जो मनुष्य धर्म से दूर है वह अनेक बुराईयों में फँस जाता है। वह अधर्म से धन कमाता है, ऐश्वर्य इकट्ठा करता है। अधर्म के धन-ऐश्वर्य से वह स्वयं सुख चाहता है, लेकिन दूसरों को सुखी देखना नहीं चाहता। संसार के सभी मनुष्यों का कल्याण धर्म से ही सम्भव है। अधिकार के साथ यदि धर्म नहीं जुड़ा है तो वह अधिकार विनाशकारी होता है। जो व्यक्ति धार्मिक नहीं है वह देश के प्रति निष्ठावान् नहीं हो सकता।

प्रात:कालीन प्रवचन में **आचार्य कर्मवीर जी** ने कहा कि परमात्मा निश्चित रूप से जानता है कि विद्या के बिना मनुष्यों और अन्य प्राणियों का हित नहीं हो सकता, इसलिये सृष्टि के आरम्भ में ही चारों वेदों का ज्ञान देता है। सांसारिक सुख और मुक्ति ज्ञान के बिना नहीं हो सकती। ईश्वर हमारे माता-पिता के समान है। वह सर्वज्ञ है इसलिये हमारी आवश्यकताओं को जानता है। जैसे परिवार, समाज, राष्ट्र, संगठन में व्यवस्था के नियमों का पालन करना पड़ता है ऐसे ही संसार में सुखी रहने के लिये ईश्वर के बनाये नियमों का पालन करना आवश्यक है।

सायंकालीन प्रवचन में उपदेश मंजरी पुस्तक के चौदहवें

उपदेश पर चर्चा करते हुए **उपाचार्य सत्येन्द्र जी** ने कहा कि पंचमहायज्ञों का हमारे जीवन में बहुत महत्त्व है, इसीलिये महर्षि दयानन्द जी ने इसका निर्देश सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, पंचमहायज्ञविधि आदि ग्रन्थों में किया है। केवल व्यक्तिगत और पारिवारिक हितों की चिन्ता नहीं करना चाहिये अपितु अनाथ, असहाय, रोगी एवं साधारण प्राणियों के कल्याण के लिये भी प्रयास करना चाहिये। जीवन की सफलता पंचमहायज्ञ के करने में ही है। इन यज्ञों से व्यक्ति में संवेदना, उदारता और धार्मिकता के विचार दृढ़ होते हैं।

शनिवार सायंकालीन प्रवचन के क्रम में वानप्रस्थी **श्री देवमुनि जी** ने कहा कि साधारण मनुष्य अकस्मात् लाभ से बहुत प्रसन्न और हानि से बहुत दु:खी हो जाता है। साधारण मनुष्य सुख की अवस्था में भगवान् को भूला रहता है, किन्तु थोड़ा दु:ख मिलने पर भगवान् को कोसने लगता है। योगी प्रतिदिन, प्रतिपल ईश्वर को याद रखता है इसलिए दु:ख के आने पर ईश्वर को कोसता नहीं है, किन्तु उसके कारण पर विचार करता है कि किस कारण मुझे यह दु:ख मिल रहा है। साधक **श्री ओमपाल जी** ने कहा कि ब्रह्मचर्य के पश्चात् व्यक्ति के पास विकल्प होते हैं कि वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे अथवा सीधा संन्यास ग्रहण करे। व्यक्ति चाहे किसी भी आश्रम में रहे, उसको धार्मिकता के गुण धृति, क्षमा आदि को धारण करना अनिवार्य है। व्यक्ति को अपने अन्दर के शत्रु- काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रयास करते रहना चाहिए। **श्री व्रतमुनि जी** ने कहा कि जहाँ शिक्षा की कमी है वहाँ आज भी लोग भूत-प्रेत मानते हैं और उससे भयभीत होते रहते हैं। माता, पिता, अध्यापक एवं अन्य कोई व्यक्ति बच्चों को भूत-प्रेत आदि से बचपन में नहीं डरायेंगे तो कोई भी बच्चा नहीं डरेगा।

रविवारीय प्रात:कालीन सत्र में **सुश्री प्रिया जी** ने भजन सुनाया- 'आत्मचिन्तन मार्ग पर चलती रहो चलती रहो..........।'

ब्र. रविशंकर जी ने कहा कि आश्रम में रहने वाले लोग हों या परिवारों में रहने वाले लोग हों, दोनों ही प्रकारों में कुछ बातें हैं, जो सभी जगह पाई जाती है। यदि किसी व्यक्ति के पास धन नहीं है तो उसे धन की कमी खलती है। यदि आवास की अनिश्चितता है तो वहाँ पर भी कमी खलती है। यदि भोजन की व्यवस्था नहीं हो पा रही है तो भोजन की कमी खलती है। रोग होने पर चिकित्सा नहीं हो पा रही हो, वहाँ पर भी यही बात लागू होती है। लेकिन एक विषय ऐसा है जो सबसे ज्यादा अछूता रहता है, क्या किसी को ईश्वर की कमी खलती है? माता, पिता, गुरु की कमी खलती है, क्या ईश्वर के विषय में भी हम ऐसे ही चिन्ता करते हैं? कोई ऐसी समस्या आ जाती है जिसका हमारे पास समाधान नहीं होता, तब हम ईश्वर को याद करते हैं। मन में भय, असुरक्षा की भावना आदि दु:खों की एकमात्र औषधि ईश्वर है। **ब्र. उन्नीकृष्णन जी** ने कहा कि आज देश में और विश्व में अनेक गम्भीर समस्यायें हैं। जैसे-इस्लामिक आतंकवाद, गौ हत्या, नकली नोट, मत परिवर्तन, भ्रूण हत्या, मुस्लिम जनसंख्या वृद्धि, भ्रष्टाचार, मूर्तिपूजा, कब्रपूजा, जातिवाद, नास्तिकता, देशद्रोह, कामचोरी, आलस्य, प्रमाद आदि। यह सब नेताओं में देशभक्ति की कमी के कारण है। कश्मीर, केरल, नागालैण्ड, मिजोरम, सिक्किम, आसाम तथा पं. बंगाल में साम्प्रदायिक तनाव की स्थिति बनी रहती है। वेद के आदेशानुसार हमारे वीर आगे बढ़ें और शत्रुओं का नाश करें।

पृष्ठ संख्या ९ का शेष भाग...........

तथा हैदराबाद सत्याग्रह जिनमें प्रमुख हैं। इन सत्याग्रहों में आपके व्याख्यानों से जनता को बल मिलता था। हिन्दी सत्याग्रह में तो आपने वेद के केवल 'अग्नि' शब्द पर अनेक व्याख्यान दिये थे। जो कालान्तर में अद्भुत ज्ञान का भण्डार सिद्ध हुये।

स्वयं को समर्पित कर देने वाले स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती का देहावसान अत्यन्त रुग्णता के कारण १५ जनवरी १९६९ ई. को हुआ था। अनेक बड़े कार्यों को करने के स्वप्न उनके अन्दर विद्यमान थे जो कि फिर मूर्त रूप में आ न पाये। जब उनके समकालीन व्यक्तियों से उनके बारे में सुनते हैं तो हृदय गदगद हो जाता है। काश! कि हम भी उस दौर में हुये होते। उनकी अन्त्येष्टि पर पं. प्रकाशवीर शास्त्री ने कहा था "पं. बुद्धदेव को जन्म देकर यह धरा धन्य हो गयी।" यह बात सोलह आना सत्य प्रतीत होती है। ऐसा दयानन्द भक्त, ऐसा कर्त्तव्यनिष्ठ, ऐसा सिद्धान्त योगी, ऐसा ऊहावान् इस धरा को धन्य करने ही तो आया था। आज हमारे सम्मुख उनके कार्य हैं, उनके लिखे ग्रन्थ हैं। ये सब उनके प्रतिनिधि ही तो हैं। धन्य है स्वामी श्रद्धानन्द तेरा मतवाला हो जाना। कैसी अद्भुत प्रतिभाओं को जन्म दे दिया तूने। जिनमें एक प्रतिभा स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती के नाम से प्रख्यात है। महाविद्वान् पं. भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर ने कहा था "धरती तल पर वेद विषय में पं. बुद्धदेव जैसी सूझ किसी की नहीं।" पं. चमूपति की कुछ पंक्तियाँ स्मरण हो रही हैं-

प्रभु! छम-छम बरसत नीर।। इन बुदियन सों। मम नयनन सों। और गगन सों। टपकत प्रेम अधीर।।